जैन भारती

जून 2014 • वर्ष 62 • अंक 6 • वार्षिक ₹ 200

'बदलना है तो दुनिया को नहीं, स्वयं को बदलो'

श्रद्धाभरा नमन

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN

A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती

वर्ष 61 • जून 2014 • अंक 6

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	अकाल मृत्यु की पहली घटना	–आचार्य महाप्रज्ञ	7
3.	भाव शुद्ध रखो	–आचार्य महाश्रमण	11
4.	शताब्दियों का एक दुर्लभ व्यक्तित्व	–आचार्य महाप्रज्ञ	15
5.	जिज्ञासा के खुलते पंख	–आचार्य तुलसी	18
6.	सपनों से निकलते सपने	–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	23
7.	आपका जाना हर रोज अखरता है	–पदमचन्द पटावरी	28
8.	जैन शिक्षा एवं एकता के प्रतीक–तुलसी	–प्रोफेसर भोपाल चन्द लोढ़ा	30
9.	समाधान के दर्पण में	–आचार्य तुलसी	35
10.	हर समस्या का समाधान संभव	–आचार्य तुलसी	39
11.	संस्कार-निर्माण की यात्रा	–आचार्य तुलसी	41
12.	मुखौटे को बेनकाब करें	–प्रोफेसर डॉ. महेन्द्र जैन	45
13.	उत्तर क्या और कैसे?	–वियोगी हरि	46
14.	विश्व समस्या : निदान के आयाम	–प्रोफेसर आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	48
15.	तुलसी की बोध-कथाएं		51
16.	कर्म काटने की कला	–साध्वी समताश्री	54
17.	झरोखा संगठन का..........	–पदमचन्द पटावरी	57

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/– • त्रैवार्षिक 500/– • दसवर्षीय 1500/–रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

जगद्वन्द्यः स्वामी विशद चरितो नाम तुलसी

आचार्य तुलसी समाधि स्थल : नैतिकता का शक्तिपीठ

आचार्य तुलसी की 18वीं पुण्यतिथि पर श्रद्धाप्रणति

अणुव्रत प्रवर्तक, नैतिकता के महान संदेशवाहक आचार्य तुलसी के महाप्रयाण के बाद अंतिम संस्कार की यह स्थली 'नैतिकता का शक्तिपीठ' के रूप में प्रतिष्ठित है। आचार्य तुलसी का यह समाधि स्थल उनके द्वारा प्रदत्त नैतिक मूल्यों के विकास प्रचार-प्रसार एवं संस्कारों के जागरण के लिए निरंतर तत्पर है। आचार्य तुलसी ने अपने साठ वर्षीय शासनकाल में नैतिकता का संबोध एवं जन-जीवन में चरित्र की चेतना को जाग्रत करने के लिए भारत के अनेकानेक प्रांतों की पैदल-यात्रा कर मानवीय मूल्यों की अलख जगाई। ऐसे महामानव की याद में खड़ा है 'नैतिकता का शक्तिपीठ'।

शक्तिपीठ इसकी स्थापत्य-कला अपनी वैशिष्ट्यता लिए हुए है। यह समाधि स्थल श्रद्धालुओं के लिए उपासना और ध्यान-साधना की उपयुक्त तपःस्थली है। आचार्य तुलसी का महाप्रयाण 23 जून, 1997 को हुआ। उसके बाद इस समाधि स्थल का लोकार्पण 1 सितंबर, 2000 को हुआ।

समाधि स्थल परिसर में 30 हजार वर्गफुट निर्माणकार्य के अंतर्गत तीन प्रशाल एवं नौ कमरे अवस्थित हैं। इनसे जुड़ी दर्शक दीर्घाएं भी विस्तृत हैं। समाधि स्थल से संलग्न एक विशाल मंच भी है, जिसके सम्मुख लगभग 50 हजार श्रद्धालु जन बैठकर समाधि स्थल को निहारते हुए किसी विशाल आयोजन में भाग ले सकते हैं। ऊपर की गैलरी में तुलसी चित्रदीर्घा द्रष्टव्य है।

समाधि स्थल परिसर के मध्य 3 हजार वर्गफुट के गोल घेरे में मूल समाधि अवस्थित है। इसके शिखर पर चारों दिशाओं में लगे संगमरमर पर आचार्य तुलसी के विभिन्न मुद्राओं में रेखाचित्र उनकी स्मृति को मुखर कर रहे हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि समाधि स्थल के अंतःस्थल भूमि में एक अस्थि-कलश स्थापित है। यह अस्थि-कलश अष्ट धातुओं एवं बहुमूल्य रत्नों की नक्कासी से युक्त सिद्धहस्त शिल्पियों द्वारा निर्मित किया गया है।

नैतिकता के शक्तिपीठ को बाहरी आकर्षण एवं सुरम्यता प्रदान करने के लिए परिसर की सीमा में एक लाख वर्गफुट का उद्यान भी लगाया गया है।

नैतिकता के शक्तिपीठ, आचार्य तुलसी समाधि स्थल पर स्थापत्य कला के बाहरी परिवेश को देखने एवं नैतिकता के महान संबोधक को श्रद्धा से स्मरण एवं आत्मशांति को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन बड़ी संख्या में विभिन्न धर्मों के श्रद्धालुओं का आगमन निरंतर जारी रहता है। यहां आने वाले आगंतुक यहां की रमणीयता के साथ आचार्य तुलसी द्वारा प्रदत्त संदेश को मन और भावों से आत्मसात करने की प्रेरणा लेकर प्रस्थान करते हैं।

भारत में लोकतंत्र कभी हार नहीं सकता

लोकतंत्र में जनता की जुबान और स्वतंत्र सोच समूचे तंत्र की संरचना करती है। जहां न जाति की प्रधानता होती है और न धर्म संप्रदाय की, न कोई ऊंचा माना जाता है और न कोई नीचां, न कोई काला होता है और न कोई गोरा, न कोई अमीरी से पहचाना जाता है और न कोई गरीबी से पहचान खोता है। सच्चा लोकतंत्र सिर्फ मताधिकार जैसे कानूनी अधिकारों तक सीमित नहीं रहता वरन उसका हर पहलू आम जनता की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं उसके संरक्षण की संभावनाओं से जुड़ा होता है।

आजादी के बाद भारत में प्रजातंत्रीय व्यवस्था की शुरुआत हुई। बाद में आम चुनावों के माध्यम से सरकारें आती गईं और शासन चलता रहा। खेद का विषय था कि सत्ता पर सवार हर सरकार ने अपने निजी स्वार्थों की आड़ में लोकतंत्र का उपहास करना शुरू कर दिया। जिस संविधान की शपथ लेकर ये सरकारें सत्तारूढ़ हुई, उस संविधान को नित नये संशोधनों से काटा-छांटा जाने लगा। संभव है अनेक संशोधन सामयिक एवं जरूरी रहे होंगे, पर ऐसे संशोधन भी लाये गये जो अप्रासंगिक थे। और इनमें अधिकांशतः वोट बैंक की राजनीति अधिक प्रतीत हुई।

हम देशवासी सबकुछ स्वीकारते हुए आगे चलते रहे। पर लोकतंत्र के चेहरे की विद्रूपता स्पष्ट दिखाई देने लगी। जनता आकंठ सभी विसंगतियों में डूबने लगी। शुक्र इतना था कि राष्ट्र की अस्मिता और भरोसे की आस हर बार जिंदा रही। और इस बार जब देश की 16वीं लोकसभा के चुनावों ने दस्तक दी, संभावनाओं की नई आहट सुनाई देने लगी। यह पहला अवसर था, जब करोड़ों युवा मतदाता पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग करने को उतावले दिखाई दिये। युवा शक्ति में नये जोश और विश्वास का जज्बा देखा गया। लोकतंत्र के ब्रह्मास्त्र को देश की दशा और दिशा को बदलने में प्रयुक्त किया गया। यूं लगा कि इस बार भारत के मतदाता का साहस और पौरुष जैसे जाग उठा हो। कहते हैं कि मतदाता की थाह लेना कठिन होता है, पर इस बार तो परिदृश्य बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहा था, क्योंकि जनता अधकचरी घोषणाओं और थोथे वायदों के भार को ढोते हुए थक चुकी थी। यहां प्रश्न किसी दलविशेष का नहीं था। जिन्हें भी भारी विश्वास के साथ जनता ने सेवार्थ भेजा, वे अपने वायदों के प्रति कमजोर निकले। मतदाता के मत का यह अपमान लोकतंत्र के उपहास से कम नहीं था। जनता का धैर्य चुक गया था।

इस बार जब चुनावी रणभेरी बजी, मोर्चाबंदी लगी तब विश्वास जागा कि शायद तसवीर कुछ अलग होगी। सर्वत्र सच्ची और सार्थक चर्चाएं होंगी। उन मुद्दों पर ही बहसें होंगी जो लोकतंत्र को कमजोर कर रहे हैं । चर्चाओं में जनता के दर्द को समझा जायेगा, यह अपेक्षित था। ढेरों प्रश्न जो अनुत्तरित हैं, उन्हें उत्तर मिलेगा। चुनाव से पूर्व राजनीति के पर्दे पर एक दूसरे की अच्छाइयों को जानते हुए भी उनकी बुराइयों के ग्राफ को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की जो आक्षेप-प्रत्याक्षेप की शैली सामने आई, तो ऐसे दौर में लगा–भोली जनता को अनपढ़ और अपना पिछलग्गू समझने की परंपरागत भूल इस बार भी हो रही है। कहना उचित होगा कि लोकतंत्र को भुनाने में कोई पीछे नहीं रहा, पर ऐसा हुआ नहीं । भारत की आत्मा ने सूरज की धूप सही है तो प्रकाश भी पाया है।

देश की अंतरात्मा उन नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना के माध्यम से लोकतंत्र को विजयी बनाने में संलग्न हुई। यद्यपि पूरे देश की जनता को इन विसंगतियों से बाहर नहीं लाया जा सकता, क्योंकि बल प्रयोग, प्रलोभन और विवशता के हथोड़े थम कहां रहे हैं, फिर भी देशवासियों की राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय अस्मिता के द्वार पुनः खुल रहे हैं। सत्ता परिवर्तन की प्रासंगिकता पर देश की आवाम ने मानो जैसे फैसला ही कर लिया, क्योंकि जनता के लिए राजनैतिक दल और पार्टियां आदर्श नहीं होते। जनता अपने मताधिकार से बदल सकती है वे विसंगतियां, जो देश के लोकतंत्र को क्षत-विक्षत कर रही हैं।

हम सोचें कि सही मायने में क्या नहीं है हमारे देश में? कौनसी ऐसी संपदा नहीं है हमारे पास, जिसकी वजह से हम औरों से आगे जा नहीं सकते। विश्व की सर्वाधिक बड़ी युवा संपदा सिर्फ हमारे पास है। और इसी रोशनी में देश की हस्तियां, युवा-शक्ति और वे लोग, जो देश की विरासत और संस्कृति पर विश्वास रखते हैं, आत्म विश्लेषण करने लगे। उन्होंने चिंतन किया कि अब ऐसी ओछी राजनीति का जवाब देने ओर ऐसे तत्त्वों की औकात बताने का अवसर आ गया है। इस दिशा में अनेक जन आंदोलन भी सामने आये। स्वयं चुनाव आयोग ने कमर कसी। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रणीत अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से अणुव्रत चुनाव : आचार-संहिता को पुनः प्रचारित प्रसारित किया गया। आचार्यश्री महाश्रमण ने अपना सामयिक संदेश देश के नाम देकर अपने कर्तव्य की पालना की।

यह चुनाव नई सरकार लाने का चयन नहीं बल्कि चुनौती था, क्योंकि देश का मन और मस्तिष्क दोनों ही इस वक्त विकास के इंतजार में है। जनता उस प्रशासन को देखना चाहती है जिसमें सिर्फ और सिर्फ आम जनता का सुख और शांति लाने का संकल्प हो। देखना है जनता के जिस भरोसे और विश्वास पर सवार हो कर आई नई सत्ता भारत के दृढ़ संकल्पी प्रधानमंत्री नरेन्द्र भाई मोदी के नेतृत्व में अपने सफर की शुरुआत कैसे और कहां से करती है। हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं और अपेक्षा करते हैं कि वे उन सभी सपनों को साकार करने की दिशा में गतिशील और सफल होंगे जो उन्होंने देशवासियों को दिखाये हैं। साथ ही भारत के लोकतंत्र को सांस्कृतिक गरिमा और ऊंचाई प्रदान करेंगे, जिसके लिए हम पूरी दुनिया में सहस्राब्दियों से जाने पहचाने जाते हैं।

हम अपनी कमजोरियों को अपनी ताकत बनाकर आगे बढ़ें। इसी शुभकामना के साथ....

मुमुक्षु शान्ता जैन

अकाल मृत्यु की पहली घटना

आचार्य महाप्रज्ञ

इस संसार में कोई भी एकरूप नहीं होता। न भीतर में एकरूप और न बाहर में एकरूप। रूप बदलते रहते हैं। यदि हमारी दृष्टि सूक्ष्म हो तो जिसको हमने कल देखा, वह आज नया प्रतीत होगा। वह कल जैसा नहीं होगा। आज जिसे हम देख रहे हैं, वह अगले कल बदल जायेगा, किंतु स्थूल दृष्टि के कारण हम सबको समान मानते चले जा रहे हैं। इसे तर्कशास्त्र में प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। जिसे कुछ दिन पहले देखा है, उसे देखकर यह कह देते हैं–'यह वही है', किंतु सूक्ष्म में इतना परिवर्तन होता है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। जो परमाणु स्कंध हमारे शरीर में हैं, वे प्रतिक्षण बाहर जा रहे हैं, नये आ रहे हैं। पुराने का जाना और नए का आना–एक क्रम बना हुआ है और वह क्रम पूरे संसार पर और पूरे पदार्थ जगत पर लागू होता है।

नदी का पानी बह रहा है। आप तट पर खड़े होकर देखें–नदी में अभी जो पानी है, दस मिनट बाद वह पानी नहीं होगा। वही नदी है, वही प्रवाह है, पर पानी वह नहीं है। इसी प्रवाह को ध्यान में रखकर उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया–संतति की अपेक्षा अनादि है। एक संतति–एक प्रवाह चल रहा है और वह प्रवाह कभी टूटता नहीं है। प्रवाह की दृष्टि से अनादि और नये पर्याय की अपेक्षा से सादि। यह अनादि और सादि का एक क्रम चल रहा है। जो हम देख रहे हैं उसके भीतर न जाने कितना छिपा हुआ है।

भगवान ऋषभ युवा अवस्था में आ गये। उस युग में युवावस्था बहुत जल्दी आती थी। उस समय का काल बहुत स्निग्ध था। परिवर्तन में क्षेत्र और काल दोनों का अंतर रहता है। आत्मा एक है, कर्म भी सबके अपने-अपने हैं। देश, काल भी अपना-अपना होता है। एक अफगानिस्तान में पैदा होगा, एक कश्मीर में पैदा होगा और एक तमिलनाडु में पैदा होगा। बाहर की बनावट, बाहर का रंग-रूप बिलकुल भिन्न हो जायेगा। यह देश और काल का प्रभाव है। आंतरिक प्रभाव भी अलग-अलग होता है। आंतरिक बनावट में भी बहुत अंतर आता है।

जब भगवान ऋषभ पैदा हुए उस समय का देश, काल भिन्न था। काल स्निग्ध था, इसलिए हर चीज जल्दी पनप जाती थी। जहां स्नेह अधिक मिलता है, वस्तु पनप जाती है।

काल में इतनी स्निग्धता थी कि पनपने का अवसर बहुत जल्दी मिलता था। नवजात शिशु थोड़े समय में युवा बन जाता। ऋषभ भी युवा बन गये।

एक प्रश्न आया—ऋषभ और सुमंगला युगल हैं। क्या नई परंपरा का सूत्रपात होना चाहिए?

युगलों के मन में प्रश्न था—अब तक कल्पवृक्ष स्वतंत्र थे, कोई छीना-झपटी नहीं होती थी। अब कल्पवृक्ष को लेकर लड़ाइयां शुरू हो गईं। हो सकता है कि आने वाले समय में स्त्री और पुरुषों को लेकर भी झंझट खड़ा हो जाये, लड़ाइयां शुरू हो जायें। कोई किसी को उठाकर, अपहरण कर ले जाये। कोई नई परंपरा के बारे में सोचना चाहिए। कोई भी परंपरा किसी अपेक्षा के साथ शुरू होती है। परिस्थिति होती है, मनुष्य को सोचना पड़ता है और वह नई परंपरा का सूत्रपात करता है।

सर्वांगीण जीवन के चार घटक हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। काम भी हर व्यक्ति में होता है, अर्थ की चेतना भी हर व्यक्ति में होती है, संग्रह की भावना भी होती है और धर्म की भावना भी होती है। उस समय तो सहज धर्म हर मनुष्य में था। मोक्ष की, स्वतंत्र रहने की भावना भी थी। चारों पुरुषार्थ काम कर रहे थे, किंतु सब शांत थे। काम भी शांत था। कहीं काम को लेकर अपराध नहीं था। काम वृत्ति ने किसी को सताया नहीं। सेक्स का प्रश्न बहुत छोटा था, कोई मुख्य प्रश्न नहीं था। अर्थ की चेतना भी प्रकट नहीं थी। संग्रह करना जानते ही नहीं थे। कुछ अपने पास होता भी नहीं था। आज की स्थिति से बिलकुल भिन्न थी उस समय की स्थिति। एक जैन मुनि के लिए कहा जाता है कि साधु कल की चिंता नहीं करता। वे तो कल की नहीं, संध्या की भी चिंता नहीं करते थे। सारी स्थितियां भिन्न थीं, किंतु जैसे-जैसे समय बदल रहा था, काल की स्निग्धता कम होने लगी। जब काल की स्निग्धता कम हुई, उसके परिणाम भी आने लगे।

एक नई घटना घटी। एक युगल ने एक नव युगल को जन्म दिया। नव जन्मा युगल छोटा ही था। कुछ दिनों में बहुत बड़ा भी हो गया, पर अभी तक माता-पिता विद्यमान थे। छः महीने हुए नहीं थे युगल के जन्म को। एक बार माता-पिता और दोनों संतान—चारों मिलकर जा रहे थे। एक जगह वृक्ष के नीचे बैठे। शिशु युगल ने कहा—'आप चाहें तो थोड़ी देर इधर-उधर घूमकर आ जायें।' माता-पिता ने कहा—ठीक है। वे जंगल में घूमने चले गये। शिशु-युगल एक ताड़ के पेड़ के आस-पास खेलने लगा। सोचा—आज माता-पिता को छोड़कर हम स्वतंत्र क्रीड़ा करने आये हैं। बड़ी प्रसन्नता है। दोनों प्रसन्नता पूर्वक बैठे हुए हैं, किंतु अज्ञात को कौन जाने?

खेल खेल में दोनों ही,
शिशु ताल वृक्ष नीचे आए।
भोला मानस, परिवर्तन की
लिपि को वे ना पढ़ पाए।।

बहुत कठिन है अज्ञात को ज्ञात करना, अज्ञात की लिपि को पढ़ना, अज्ञात के नियमों को समझना हर किसी के वश की बात नहीं है। आदमी जो ज्ञात है, आंखों के सामने है, उसको देखता है, पढ़ता है। जो छिपा हुआ है, उसको पढ़ना बड़ा कठिन होता है। बहुत कम लोग होते हैं जिनका ज्ञान विकसित होता है, जो अज्ञात की बात को जान लेते हैं, दूर की बात को जान लेते हैं। तर्कशास्त्र में जब ज्ञान के भेद किए गए तब ये रेखाएं खींची गईं। एक ज्ञान वह होता है जो स्थूल को जानता है, निकट को जानता है और अव्यवहित को जानता है। भींत का व्यवधान आ गया, भींत से परे क्या है उसको नहीं जानता। तीन रेखाएं खींची—स्थूल का ज्ञान, निकट का ज्ञान और अव्यवहित का ज्ञान।

एक ज्ञान विशिष्ट होता है, अतिशायी होता है। उस ज्ञान के द्वारा व्यक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को जान लेता है। जो वस्तु दिखाई नहीं देती, उसको भी जान लेता है।

दूरस्थ का ज्ञान। दूरवर्ती वस्तु को जान लेता है, बहुत दूर की बात को जान लेता है, हजारों-हजारों किलोमीटर दूर की बात को जान लेता है।

अव्यवहित का ज्ञान। व्यवहित को जान लेता है। बीच में पर्दा डाल दिया, भींत आ गई, कोई फर्क नहीं पड़ता। यहां देखे, चाहे वहां देखे, कोई अंतर नहीं आता।

दो प्रकार की ज्ञान की चेतना है। एक अल्प विकसित चेतना है वह दूर की बात को नहीं जानती, अज्ञात को नहीं जानती। चेतना का विकास हो गया, अतिशय ज्ञान प्रकट हो गया, वह दूर की बात को भी जान लेता है।

युगलों में इतना ज्ञान नहीं था कि दूर की बात को जान सकें। खेलते-खेलते वह शिशु-युगल पेड़ की छांव में आया। अकस्मात ऐसा योग मिला कि ताड़ का फल टूटा और शिशु जोड़े में जो पुरुष था, सीधा उससे आकर टकराया। इतनी दूर से कंकड़ भी फेंको तो भारी बन जाता है। इतना बड़ा फल इतनी ऊंचाई से आया, आकर सिर पर पड़ा और पड़ते ही वह लुढ़क गया। वह कन्या मर्माहत हो गई। दो-चार मिनट सहलाया। उठो, हम चलें पिताजी के पास। उठ नहीं रहा है। हिलाया तो भी नहीं हिल रहा है। सोचा–इतनी गहरी नींद तो आ नहीं सकती। अभी गहरी नींद का समय भी नहीं है, क्या हुआ?

सूई समय की घूमी सहसा,
एक ताड़फल टूट गिरा।
वज्राहत सा नर शिशु का सिर,
आज हुई है मौन गिरा।।
कोमल सिर को क्रूर नियति ने,
पल भर में निष्प्राण किया।
मर्माहत-सी शिशु कन्या का,
पलभर में बुझ गया दीया।।
पहली बार मृत्यु का दर्शन,
ज्ञात 'मृत्यु का गरल' नहीं।
अश्रुत और अदृष्ट कथा की,
हृदय स्पर्शना सरल नहीं।।

उस समय चिकित्सा का भी बोध नहीं था। आजकल प्राथमिक चिकित्सा तो हर कोई जान लेता है। न प्राथमिक चिकित्सा थी, न मध्य की थी और न आगे की थी। चिकित्सा का कोई प्रश्न ही नहीं था। चिकित्सा का विकास ही नहीं हुआ था। कन्या ने सोचा–क्या हुआ? बहुत बार बुलाया, बोल नहीं रहा है। उठाना चाहती हूं तो उठ नहीं रहा है। क्या हो गया है इसे? मृत्यु का विकल्प नहीं था। मरने के शब्द से कम लोग परिचित होते थे। पहले माता-पिता होते, छः महीने का समय बीत जाता तो माता-पिता दिवंगत हो जाते। इसके सिवाय मरना कोई जानता नहीं था। छोटी अवस्था में मरने का कोई प्रश्न ही नहीं था। आज उस कन्या को पहली बार मृत्यु का साक्षात्कार हुआ। उस युग में, तीसरे 'अर' की संपन्नता के क्षणों में पहली बार अकाल मृत्यु हुई। कभी नहीं होती थी अकाल मृत्यु। न कोई दुर्घटना में मरता, न कोई बीमारी मारने वाली थी। समय आता तब मौत होती, पहले मरने का सवाल ही नहीं था।

भाई की यह स्थिति देख कन्या स्तब्ध रह गई। न वह बोल सकी और न वह हिल सकी। प्रतिमा की तरह स्थिर स्तब्ध खड़ी थी। मन अकल्पित उदासी से भर गया।

हिल न सकी वह, बोल सकी ना,
मानस चिंतन शून्य हुआ।
प्रतिमा-सी स्थिर स्तब्ध खड़ी है,
जीवन हाय अनन्य हुआ।।

मृत्यु के अनेक प्रकार हैं। हम दो प्रकारों पर विचार करें–एक अपनी निश्चित अवधि पर होने वाली मौत और एक निर्धारित अवधि से पहले होने वाली मौत। आज भी प्रश्न आता है कि अकाल मृत्यु होती है या नहीं? इन दिनों में अनेक दुर्घटनाएं हुईं। परिवार के लोग आयें, पूछा–अकाल मृत्यु होती है या नहीं? होती है। जीना है सौ वर्ष और मर जाता है दस वर्ष में। अगर अकाल मृत्यु न हो, सौ वर्ष जीना है तो व्यक्ति सौ वर्ष पूरा कर लेगा, किंतु अगर कोई दुर्घटना हो गई, ऐसा निमित्त मिला तो वह बीच में ही मर जायेगा, अकाल मृत्यु हो जायेगी।

अकाल मृत्यु और काल मृत्यु का प्रश्न बड़ा गंभीर है। तेरापंथ धर्मसंघ में पहले माना जाता था कि अकाल मृत्यु होती है। बीच में धारणा बदल गई कि अकाल मृत्यु नहीं होती। पूज्य गुरुदेव के सामने यह प्रश्न आया। वि. संवत् 2000 में भीनासर और गंगाशहर प्रवास में यह प्रश्न काफी चर्चित रहा कि अकाल मृत्यु होती है या नहीं? इस पर काफी चिंतन के बाद, काफी आधार खोजने के बाद एक निष्कर्ष पर पहुंच गए।

जैन आगम और आचार्य भिक्षु की वाणी–दोनों में आधार मिले। स्थानांग सूत्र में बतलाया गया है–सात कारणों से अकाल मृत्यु होती है। भिक्षु स्वामी ने अनुकंपा की चौपाई में लिखा–लाखों जौहर हुए और घटती आयु के कारण काफी मर गये। घटती आयु का अर्थ है–अकाल मृत्यु। चिंतन के बाद गुरुदेव ने यह स्थापना कर दी कि अकाल मृत्यु होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो ऐसा लगता है कि सौ में से नब्बे आदमी तो अकाल मृत्यु से ही मरते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई दुर्घटना हो, कोई कार ऐक्सिडेंट हो या वायुयान का क्रैश हो। दुर्घटना में होने वाली मृत्यु ही अकाल मृत्यु नहीं है। अकाल मृत्यु का कारण बाहर की दुर्घटना भी है और भीतर की दुर्घटना भी है। बहुत लोग भीतरी कारण से अकाल मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

पूरा जीवन कौन जीता है? जो व्यक्ति बहुत ज्यादा गुस्सा करता है, अकाल मृत्यु को बुलाता है। आज की वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष है–एक बार का तेज गुस्सा नौ घंटे की जीवनी शक्ति को समाप्त कर देता है। बहुत तेज गुस्सा करने वाला अकाल मृत्यु को निमंत्रण देता है। जिस व्यक्ति में बहुत प्रबल कामवासना होती है, वह शक्ति को ज्यादा क्षीण करता है, अकाल मृत्यु को निमंत्रण देता है। जिस व्यक्ति में लोभ की भयंकर चेतना होती है, रात-दिन संग्रह की चिंता में डूबा रहता है, वह अकाल मृत्यु को निमंत्रण देता है। जितने कषाय हैं, उपकषाय हैं, वे सब अकाल मृत्यु को निमंत्रण देने वाले हैं। ये भीतर की दुर्घटनाएं हैं। बाहर की दुर्घटना तो कभी-कभी होती है। भीतर की दुर्घटना तो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के साथ होती है। इस स्थिति में अकाल मृत्यु से बचना बहुत बड़ी समस्या है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान में यौगलिक युग नहीं है जो पूरा जीवन जी ले। पूरा जीवन जीने वाले बहुत कम लोग मिलते हैं। कोई तीस में चला जाता है, कोई चालीस-पचास में चला जाता है। आजकल तो तीस-चालीस आयु के युवकों का हार्ट फेल ज्यादा होता है। सर्वे किया गया, कारण खोजा गया तो पता लगा कि उनमें तनाव ज्यादा रहता है। आज व्यावसायिक तनाव इतना ज्यादा हो गया है कि युवक तीस-चालीस की उम्र में चले जाते हैं। निरंतर तनाव पैदा करने वाली यह व्यावसायिक प्रणाली नहीं बदली जायेगी, तनाव को मिटाने का उपाय नहीं खोजा जायेगा तो बहुत अच्छे-अच्छे युवकों से समाज को हाथ धोना पड़ सकता है।

उस समय में, यौगलिक युग में बाहरी दुर्घटना भी नहीं होती थी, भीतर की दुर्घटना भी नहीं थी। आहार सीमित, भोग सीमित, वासनाएं सीमित–सब कुछ सीमित था। बाहर और भीतर दोनों ओर से अकाल मृत्यु का कोई कारण नहीं था। उस युग में पहली बार बाहर की दुर्घटना घटित हुई। कन्या समझ नहीं पा रही थी। बहुत असमंजस में थी। निर्णय नहीं कर पा रही थी कि क्या हो गया? आज तक मैंने नहीं देखा कि यह इतना लंबा सोता है। शायद दिन में सोने का क्रम भी नहीं रहा होगा। नींद की जरूरत तो ज्यादा तनाव होने पर होती है। शरीर में जहर ज्यादा हो जाये तो उसको निकालने के लिए नींद ज्यादा जरूरी है।

कन्या का मन उदास हो गया–असमय में आज नींद कैसे ले ली? क्या बात है? बुला रही हूं तो बोल नहीं रहा है। हिला रही हूं तो हिल नहीं रहा है। कुछ भी नहीं कर रहा है। वह मरने का अर्थ नहीं जानती थी। मरने का शब्द भी नहीं जानती थी। कन्या की इस उलझन को सुलझाने वाला वहां कोई नहीं था। क्या यह उलझन सुलझेगी? क्या कन्या का अकेलापन मिटेगा?....। ❑

(क्रमशः)

भाव शुद्ध रखो

आचार्य महाश्रमण

बाहर के संसार की तरह आदमी के भीतर भी एक संसार है। वह है शरीर के विभिन्न अवयवों का संसार। इससे भी भिन्न एक और संसार है। वह है भावों का संसार। आदमी के चित्त में अनेक प्रकार के भाव उभरते रहते हैं। जैन आगम **आयारो** में ठीक कहा गया–अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे–यह पुरुष अनेक चित्तों/भावों वाला होता है। उन भावों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–शुद्ध भाव और अशुद्ध भाव अथवा शुभ भाव और अशुभ भाव। कभी आदमी बड़ा शांत, क्षमाशील दिखाई देता है तो कभी वह आक्रोश में आ जाता है। कभी वह विनम्रता का प्रयोग करते देखा जाता है तो कभी उसमें उद्दंडता का दर्शन भी हो सकता है। कभी आदमी ऋजु व्यवहार करता है तो कभी वह कुटिल व्यवहार भी करने लग जाता है। कभी वह संतोषी दिखाई देता है तो कभी उसमें इच्छाओं की तरंगें भी तरंगित होती दिखाई देती हैं। कभी राग में दिखाई देता है तो कभी द्वेष में दिखाई देता है और कभी समत्व में भी दिखाई देता है।

ये सारे शुभ और अशुभ भाव हमारे भीतर रहते हैं और प्रकट भी होते रहते हैं। हमारे जो इमोशंस हैं, वे सुप्तावस्था में न कोई विशेष लाभ देने वाले होते हैं और न नुकसान करने वाले। जब वे जाग्रत होते हैं, उभरते हैं तब उनका परिणाम मिलता है। आदमी जो प्रवृत्ति करता है, कार्य करता है उसके पीछे भी कोई प्रेरणा काम करती है। महाभारत का प्रसिद्ध श्लोक है–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः,
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदये स्थितेन, यथा
नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

मैं धर्म को जानता तो हूं, परंतु धर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं हो रही है। मैं अधर्म को जानता हूं, परंतु उससे मेरी निवृत्ति नहीं हो रही है। मेरे हृदय में कोई देवशक्ति विराजमान है। उस देव शक्ति के द्वारा जैसे मैं नियुक्त किया जाता हूं वैसे करने लग जाता हूं।

यह अंतःस्थित देव कौन है? हमारी चेतना के शुद्ध भाव देव रूप हैं और अशुद्ध भाव भी शक्ति के रूप में हैं। वह शक्ति जैसे आदमी को नियुक्त करती है, वैसे वह करने लगता है। जैन तत्त्वविद्या में भाव का प्रकरण आता है। उसमें भावों को जीव का स्वरूप माना गया है। गुरुदेव तुलसी ने जैनसिद्धांतदीपिका में कहा है–**भावाः स्वरूपं जीवस्य**। भाव जीव का स्वरूप है। कर्मों के उदय या विलय से होने वाला भीतर का परिणमन भाव है। आठ कर्मों में मुख्य मोहनीय कर्म है। हमारे भाव जगत का संबंध मुख्यतः मोहनीय कर्म के साथ है।

मोहनीय कर्म की प्रबलता के कारण गुस्सा आता है, अहंकार होता है। कुटिलता, लालसा, राग, द्वेष आदि मोहनीय कर्म के प्रभाव से होने वाले भाव हैं। क्षमा, समता, अहंकार-शून्यता, सरलता, संतोष आदि भाव मोहनीय कर्म के कमजोर पड़ने से उजागर होते हैं। अध्यात्म की साधना का उद्देश्य है–मोह कर्म को कमजोर कर देना।

दुनिया में हिंसा, धोखाधड़ी, इंद्रिय-असंयम आदि अनैतिक कार्य और जितने भी अपराध होते हैं उनके पीछे मूल प्रेरणा मोहनीय कर्म की रहती है। गीता में काम और क्रोध की वृत्ति पाप के हेतुरूप में बताई गई है। उनकी तुलना उत्तराध्ययन के राग-द्वेष से की जा सकती है।

दोनों में बड़ा साम्य दिखाई देता है। राग के साथ काम और द्वेष के साथ क्रोध का साम्य दिखाई देता है।

आदमी यथार्थ का दर्शन करने का प्रयास करे। यथार्थ ज्ञान होने पर आदमी उसका आचरण करने का प्रयास करता है। जब आदमी बीमार होता है तब अगर बीमारी का कारण पकड़ में आ जाए तो उसका सही उपचार करके आदमी स्वस्थ हो सकता है। कभी-कभी उपचार से ज्यादा महत्त्व निदान का होता है। ऐलोपैथी प्रणाली में निदान पर काफी बल दिया जाता है। डॉक्टर टेस्टिंग आदि के द्वारा पहले निदान करते हैं। फिर उसके निवारण का प्रयास करते हैं।

दो प्रकार की वृत्तियां बताई गई हैं—एक स्वामीवृत्ति यानी कुत्ते की वृत्ति। दूसरी सैंहीवृत्ति यानी शेर की वृत्ति। स्वामीवृत्ति अर्थात् मात्र कार्य को देख लेना। सैंहीवृत्ति अर्थात् कारण को देखना। ऐलोपैथी में सैंहीवृत्ति काफी प्रचलित है। आयुर्वेद में भी नाड़ी देखकर कारण का पता लगाने का प्रयास किया जाता है।

दोनों पद्धतियां अलग-अलग हैं, पर मूल थ्योरी में समानता है कि पहले कारण को पकड़ो फिर निदान की बात करो। गीता और उत्तराध्ययन में भी यही बताया गया है कि अपराध तो कार्य है उसका कारण है—काम, क्रोध और राग-द्वेष। व्यक्ति इन कारणों को जितना कमजोर बना देता है, उतना अपराध करने से बच जाता है। व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में अपराध के कुछ दूसरे निमित्त भी बन सकते हैं जैसे—अभाव, गरीबी, भूख आदि। इनके साथ भी जब काम, क्रोध या राग-द्वेष का भाव जुड़ जाता है तो आदमी अपराध की ओर चला जाता है। इन वृत्तियों के अभाव में आदमी भूख को सहन करता है, पर भूख के कारण अपराध में नहीं जाता। राग-द्वेष और काम, क्रोध की वृत्ति आदमी को अपराध में जाने के लिए उत्प्रेरित करती रहती है।

यद्यपि सामान्य मानव में ये वृत्तियां तो मिलेंगी, परंतु वृत्तियों के स्तर में अंतर होता है। सामान्य रूप में वृत्तियां होंगी तो आदमी विशेष अपराध नहीं करेगा। ये वृत्तियां जब उग्र हो जाती हैं तो फिर आदमी अपराध में चला जाता है। इन वृत्तियों का संतुलन बना रहे। ये अतिमात्रा में न बढ़ पाएं, इतना-सा ध्यान देना अपेक्षित है। धार्मिक साहित्य में पुरुषार्थ चतुष्टय बताया गया है—धर्म, मोक्ष, काम और अर्थ। धर्म और मोक्ष तो अध्यात्म से जुड़े हुए तत्त्व हैं। काम और अर्थ संसार से जुड़े हुए तत्त्व हैं। संसारी आदमी के जीवन में काम भी चलता है और अर्थ भी चलता है। काम और अर्थ दोनों अगर सीमा में रहते हैं तब तो ठीक है। अगर सीमा का लंघन हो जाता है तो आदमी अपराध करने लग जाता है। आदमी स्वयं का समीक्षण करे। इन वृत्तियों को संयत बनाने का अभ्यास करे।

नास्तिक दर्शन की विचारधारा के अनुसार आगे-पीछे कुछ नहीं है। मात्र वर्तमान जीवन ही है। इस विचारधारा ने भोगवाद की संस्कृति को जन्म दिया। उसने कहा कि आगे-पीछे कुछ नहीं है फिर तुम्हें किस बात की चिंता है? तुम खूब खाओ, पीओ, मस्ती करो। त्यागवाद की संस्कृति ने कहा कि आस्तिकवाद है, आत्मा है, आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व है। आत्मा पहले भी कहीं थी, मृत्यु के बाद भी कहीं रहेगी। इसलिए अपने कृत का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। अगर त्याग में रहोगे, संयम में रहोगे तो तुम दुःखों से मुक्त रहोगे। यहां भी शांति से जी पाओगे और मरने के बाद भी तुम जहां जाओगे वहां भी शांति प्राप्त कर सकोगे।

आस्तिकवाद ने त्यागवाद की संस्कृति को प्रेरित किया। मेरा तो मंतव्य है कि कट्टर नास्तिकवादी तो किसी को बनना ही नहीं चाहिए। गीता और उत्तराध्ययन ने जो बताया है, वह भी एक प्रकार से त्यागवाद की प्रेरणा देने का प्रयास है, क्योंकि उन्होंने अपराध का कारण बता दिया, कर्मबंध का कारण बता दिया कि अमुक कारणों से आदमी अपराध करता है। अमुक कारणों से कर्मों का बंध होता है। इसलिए तुम्हें इन कारणों को दूर करना चाहिए और अपने जीवन में काम, क्रोध और राग-द्वेष की वृत्तियों को नियंत्रित करके अपराध-मुक्त व दोष-मुक्त जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए, जिससे वर्तमान जीवन भी ठीक रहता है और आगे भी सद्गति मिलने की संभावना बनती है। ❑

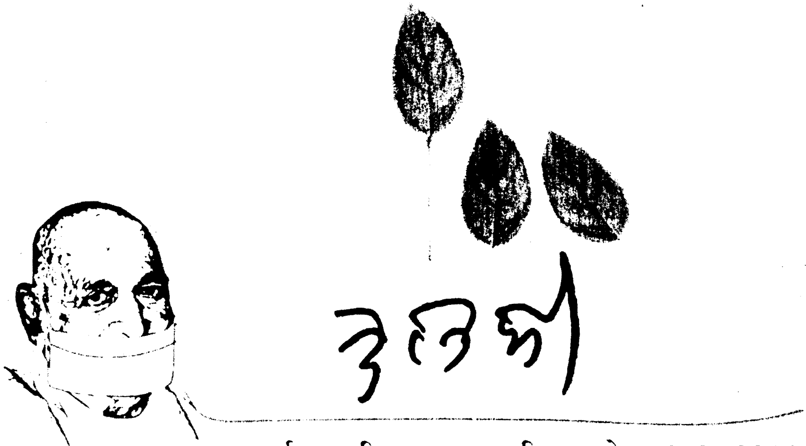

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

आचार्य तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशास्ता थे। वे धर्माचार्य होने के कारण जीवनभर व्यक्ति, समाज और देश को जीवनमूल्यों के जीने की प्रेरणा देते रहे। उनकी सोच थी कि जीवन का दूसरा नाम संघर्ष है। समस्याएं हर मोड़ पर खड़ी हैं, क्योंकि मनुष्य सही तौर पर जीवन जीना नहीं जानता। सच तो यह है कि वह अपने प्रति जागरूक भी नहीं है। सिर्फ सुख की खोज में रहने वाले को भला कहां और कैसे मिलती है शान्ति?

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष हमारे लिए एक ऐसा स्वर्णिम अवसर है जब हम विशेष लक्ष्य के साथ उनके जीवन प्रसंगों को और रचनात्मक साहित्य को पढ़कर स्वयं की सोच और शैली को बदल सकते हैं। उनका मानना था कि समस्या रोटी, मकान, कपड़ा, शिक्षा और चिकित्सा की ही नहीं है बल्कि समस्या का मूल है—परिग्रही चेतना का विस्तार और सम्यक दृष्टिकोण का अभाव।

आचार्य तुलसी कहते थे कि समस्या को सुलझाने के लिए कोई भगवान धरती पर नहीं उतरेगा। व्यक्ति स्वयं अपना भाग्य विधाता बने और उलझती गुत्थियों को विवेक, संयम और शांति से उसे सुलझाए। उन्होंने कहा-देश की समस्यायें भी सड़कों पर नहीं सुलझेंगी, नारों और हड़तालों से नहीं सुलझेंगी। उन्हें सुलझाने के लिए हर नागरिक को प्रयत्न करना होगा, त्याग करना होगा।

समस्या चाहे व्यक्ति की हो,परिवार की हो, समाज की हो या फिर देश की हो, समाधान पाने के लिए पहला कदम तो खुद को ही उठाना होगा। समाधान की दिशा में कारणों की खोज करनी होगी। इस चिंतन को भी जीना होगा कि **यदि बदलना है तो दुनिया को नहीं, स्वयं को बदलें।** अतः सुधी पाठकों के लिए आचार्य तुलसी की पुण्य तिथि पर संस्कार-निर्माण और स्वयं से जुड़ी समस्याओं पर उनके द्वारा लिखित समाधायक आलेख प्रस्तुत हैं, जो हमारे लिए दिशा-यंत्र बनकर उजालों का पथ बिछा देंगे।

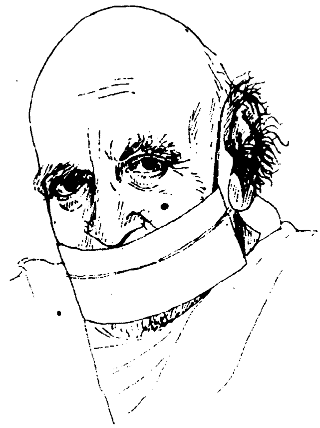

आचार्य तुलसी का जीवन वृत्त : ऐतिहासिक विहंगावलोकन

1.	जन्म	:	20 अक्टूबर 1914, लाडनूं (राज.)
2.	दीक्षा	:	5 दिसम्बर 1925, लाडनूं (राज.)
3.	युवाचार्य	:	21 अगस्त, 1936, गंगापुर (राज.)
4.	आचार्य	:	27 अगस्त, 1936, गंगापुर (राज.)
5.	युगप्रधान आचार्य	:	4 फरवरी, 1971, बीदासर (राज.)
6.	अणुव्रत आंदोलन	:	2 मार्च, 1949, सरदारशहर (राज.)
7.	साम्प्रदायिक सद्भावना के प्रयत्न	:	1954, मुंबई
8.	आगम संपादन	:	1955, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
9.	नया मोड़	:	1960, राजसमंद (राज.)
10.	धर्मक्रांति	:	1974, नई दिल्ली
11.	प्रेक्षाध्यान	:	1975, जयपुर (राज.)
12.	जीवन-विज्ञान	:	1978, लाडनूं (राज.)
13.	समण-दीक्षा	:	1980, लाडनूं (राज.)
14.	भारत ज्योति अलंकरण	:	14 फरवरी, 1986, उदयपुर (राज.)
15.	राष्ट्रीय एकता परिषद में मनोनयन	:	1990, दिल्ली
16.	वाक्पति अलंकरण	:	14 जून, 1993, लाडनूं (राज.)
17.	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार	:	31 अक्टूबर, 1993, नई दिल्ली
18.	हकीम खां सूर सम्मान	:	29 जुलाई, 1995, लाडनूं (राज.)
19.	आचार्यपद विसर्जन	:	18 फरवरी, 1994, सुजानगढ़ (राज.)
20.	महाप्रयाण	:	23 जून, 1997, गंगाशहर (राज.)

शताब्दियों का एक दुर्लभ व्यक्तित्व

आचार्य महाप्रज्ञ

आचार्य तुलसी को जानना है तो पढ़िए आचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा लिखित धर्म चक्र, तुलसी विचार दर्शन और तुलसी यशोविलास जैसे महाग्रंथ जिन्हें शिष्य ने गूंथा है श्रद्धा और समर्पण से। अपने गुरु का जीवनवृत्त, जो कालजयी जीवन गाथा का हृदयस्पर्शी छायांकन है।

आचार्यश्री तुलसी का व्यक्तित्व विरोधी युगलों से जटिल व्यक्तित्व है। उसमें अनेकांतवाद ने अपनी सार्थकता सिद्ध की है। सूर्य जैसा प्रखर तेजस्वी और चांद से भी अधिक सौम्य—दोनों ही कोणों से उसे देखा जा सकता है। धार्मिक जगत के इतिहास में वह इन शताब्दियों का एक दुर्लभ व्यक्तित्व है।

आचार्यश्री की जीवन-गाथा भारतीय चेतना का एक अभिनव उन्मेष है। इतना लंबा मुनि-जीवन, इतना लंबा आचार्यपद, इतनी लंबी पदयात्रा, इतना व्यापक जनसंपर्क, इतना जन-जागरण का प्रयत्न, इतना पुरुषार्थ, इतना आध्यात्मिक विकास, इतना साहित्य-सर्जन, इतने व्यक्तियों का निर्माण—वस्तुतः ये सब अद्‌भुत हैं। आचार्यश्री की जीवन-गाथा आश्चर्यों की वर्णमाला से आलोकित एक महालेख है। उसे पढ़कर मनुष्य नए उच्छ्‌वास, नई प्रेरणा और नई प्रकाश-शक्ति का अनुभव करता है।

पुरुषार्थ की इतिहास परंपरा में इतने बड़े पुरुषार्थी पुरुष का उदाहरण कम ही है, जो अपनी सुख-सुविधाओं को गौण मानकर जन-कल्याण के लिए जीवन जीए।

आचार्यश्री ने धर्म को एक नया रूप दिया है। इस वैज्ञानिक युग में उस धर्म की अपेक्षा है जो पदार्थवादी दृष्टिकोण से उत्पन्न मानसिक तनाव जैसी भयंकर समस्या का समाधान कर सके, पदार्थ से न मिलने वाली सुखानुभूति करा सके, नैतिकता की चेतना जगा सके। आचार्यश्री ने इस युगीन अपेक्षा को समझा और इसकी संपूर्ति के लिए अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान को प्रस्तुत किया। यह एक धर्मक्रांति है जो आर्थिक और राजनीतिक क्रांति के युग में भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम है।

दूसरों की दृष्टि से उसमें विपर्यय भी हो सकता है। मैं न उनका संवाद चाहता हूं और न प्रतिवाद। मुझे अपने में संतोष है। मैं मानता हूं कि मैंने आचार्यश्री की देन का अतिक्रमण नहीं किया

है। श्रद्धा भी उन्हीं से मिली है और तर्क भी उन्हीं से मिला है। वे दोनों में विश्वास करते हैं। मैं आचार्यश्री को केवल श्रद्धा की दृष्टि से देखता तो उनकी जीवन-गाथा के पृष्ठ दस से अधिक नहीं होते। उनमें मेरी भावना का व्यायाम पूर्ण हो जाता। आचार्यश्री को मैं केवल तर्क की दृष्टि से देखता तो उनकी जीवन-गाथा सुदीर्घ हो जाती लेकिन उसमें चैतन्य नहीं होता। श्रद्धा का विस्तार नहीं होता, पर चैतन्य होता है। तर्क में विस्तार होता है पर चैतन्य नहीं होता। आचार्यश्री के जीवन में विस्तार की अपेक्षा चैतन्य अधिक है। परंतु मैंने यह आचार्यश्री के लिए नहीं लिखी है। जनसाधारण के जीवन में चैतन्य की अपेक्षा विस्तार अधिक होता है। मैंने यह उनके लिए भी नहीं लिखी है। मेरी अपनी श्रद्धा का भी प्रश्न है। इसलिए इसमें विस्तार भी है, चैतन्य भी है।

आचार्यश्री विस्तार की अपेक्षा चैतन्य को अधिक पसंद करते हैं, अंकवृद्धि की अपेक्षा सत् की मात्रा को अधिक महत्त्व देते हैं। मैंने उन्हीं की रुचि का सम्मान किया है। इसीलिए जीवन-गाथा को बहुत थोड़े में गूंथा है। उन्होंने किया बहुत है। बहुत संघर्ष झेले हैं, चरित्र-विकास के लिए बहुत यत्न किये हैं, बहुत परिव्रजन किया है, बहुत चिंतन किया है और बहुत सारे कार्य भी। इन सारे बहुत्वों का विस्तार भी बहुत हो सकता है, पर मैं सर्वोपरि बहुत्व चैतन्य में देखता हूं, इसीलिए मैंने शाब्दिक अल्पत्व में संतोष माना है।

आचार्यश्री ने मुझे जो दिया, वह बहुत ही गुरु है। उसकी तुलना में मेरा प्रयत्न बहुत ही लघु है। पर कहीं-कहीं लघु गुरु से अधिक प्रिय होता है। मैं मानता हूं, मेरी यह लघुतम श्रद्धांजलि जनता को गुरु से कम प्रिय नहीं होगी। गुरु में लघु का समावेश कभी आश्चर्यजनक नहीं होता परंतु लघु में गुरु का समावेश अवश्य ही आश्चर्यजनक होता है।

आध्यात्मिक व्यक्ति का जीवन प्रायः घटनाबहुल नहीं होता। उसे बहुत थोड़े में रूपायित किया जा सकता है। आचार्यश्री का जीवन उस परंपरा का प्रतिवाद है। उसमें घटनाओं की शृंखला है। प्रत्येक घटना में जीवंत व्यक्तित्व का स्पर्श है। उन सब घटनाओं का आकलन करना शक्ति की सीमा से परे की बात है।

आचार्यश्री की जीवन-गाथा से परिचित होना, नए आलोक की नई रश्मियों से परिचित होना है। इस परिचय का अर्थ होगा अपने आपसे परिचित होना, अपनी समस्याओं से परिचित होना और उनका समाधान प्राप्त करना। वही जीवन वास्तव में मूल्यवान है, जिसकी ज्योति-किरणों से हमारी भूमि का कण-कण ज्योतिर्मय बन जाए।

तुलसीयशोविलास महाकाव्य में मैंने लिखा–'हर व्यक्ति की जीवन कहानी जन्म, परिवार, पारिपार्श्विक वातावरण और आर्थिक स्थिति से शुरू होती है। आचार्य तुलसी का जन्म स्वाभाविक रीति से हुआ। घर का वातावरण भी साधारण, पारिपार्श्विक वातावरण भी साधारण, आर्थिक स्थिति भी साधारण, सब कुछ साधारण। हमारी विचित्र मनोवृत्ति है कि हम साधारण में असाधारण को खोजना चाहते हैं। यदि कोई भक्त नहीं होता तो दुनिया में कोई भगवान नहीं बनता, यदि कोई भक्त नहीं होता तो दुनिया में कोई भी साधारण असाधारण नहीं बनता। हम असाधारण को साधारण से विच्छिन्न कर जीवन की पूरी कहानी

न कभी कह पाते और न कभी लिख पाते। अस्तित्व जीव का साधारण गुण है और चैतन्य उसका विशिष्ट गुण। हम अस्तित्व को छोड़कर केवल चैतन्य के आधार पर जीव के समग्र स्वरूप को नहीं समझ सकते। समग्रता से समझने के लिए अस्तित्व और चैतन्य को एक साथ देखना आवश्यक है। व्यक्ति में विशिष्टता उपजती है, साधारणता सहजता के धागे में निरंतर पिरोई हुई रहती है।

मैंने आचार्यश्री तुलसी को हर स्थिति में सहज पाया। असहजता के दर्शन प्रायः नहीं हुए। मैं सहजता में विश्वास करता हूं। आचार्यश्री तुलसी भी सहजता में विश्वास करते थे। उनकी जीवन-शैली भी सहजता से ओत-प्रोत थी। सब कुछ सहज ही सहज। मैंने सहज भाव से सहज शब्दों में लिखने का प्रयत्न किया है। इसलिए मुझे किसी असहज की शरण में जाने की जरूरत नहीं पड़ी। मेरी कठिनाई भी दूर हो गई और किसी विदग्ध के वैदग्ध्य से आहत होने का अवसर भी नहीं मिला।

यदि मैं कहता—मैं किसी बड़े आदमी का जीवनवृत्त लिखने जा रहा हूं तो मुझे उस बड़े आदमी के अहंकार को झेलना पड़ता और पता नहीं मेरा अहंकार उस अहंकार को कितना झेल पाता। मुझे प्रसन्नता है कि मैं एक साधारण व्यक्ति की जीवन-गाथा को लेकर चला और कहीं भी कंटकाकीर्ण पथ पर चलकर पैरों को विद्ध करने का क्षण नहीं देखना पड़ा। इसे मैं अपनी विशेषता मानूं, वृत्तनायक की विशेषता मानूं, दोनों की विशेषता मानूं अथवा अंतरिक्ष से फैलने वाली बृहस्पति की रश्मियों का विकिरण मानूं। कुछ भी मानूं, मैं सहजता को छोड़कर असहजता की भूमिका पर अपने चरण नहीं रख सका, उसे अपना सौभाग्य अवश्य मानता हूं।

अनेक असाधारण व्यक्ति उनके पास आए, सन्निधि में बैठकर साधारण बन गए। असाधारण के पास असाधारण आता है तो अहं की टकराहट होती है। साधारण के पास असाधारण आता है तो उसका अहं विगलित हो जाता है और वह साधारण बन जाता है। विधान परिषद के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र बाबू आए, जयप्रकाश नारायण आए, ऐसा नहीं लगा कि आचार्यश्री तुलसी असाधारण व्यक्ति से बात कर रहे हैं और उन्हें भी ऐसा नहीं लगा कि हम किसी ऊपर के तल पर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। साधारण से साधारण बात करे तभी तादात्म्य हो सकता है। एक ओर असाधारण, दूसरी ओर साधारण हो तो उनमें तादात्म्य का तार कभी नहीं जुड़ सकता।

ज्ञान से ज्ञान का संपर्क एक साधारण भूमिका है। चरित्र से चरित्र का संपर्क एक साधारण भूमिका है। जब होता है ज्ञान से ज्ञान के अहंकार का मिलन और जब होता है चरित्र से किसी पद के अहंकार का मिलन, तब होते हैं द्वंद्व, संघर्ष और टकराहट।

आचार्य तुलसी ने अहंकार-विलय की साधना की थी। उनकी विनम्रता की झोंपड़ी में जो आता, वह झुककर ही आता और कोई-कोई अहंकार की टोपी पहनकर आता तो जाते समय खुले सिर ही जाता। स्वेच्छाकृत विनम्रता व्यक्ति को महान बनाती है। इसका हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ❑

जिज्ञासा के खुलते पंख

आचार्य तुलसी

?

आचार्य तुलसी का जीवन इन्द्रधनुषी जीवन रहा। उन्होंने हर दिशा में जन-कल्याण की चेतना का उजाला फैलाया। उनके जीवन का अथ से इति तक का जीवन-वृत्त कभी लेखन में, कभी प्रवचन में, कभी संवाद में लोगों की जीवनगत समस्याओं को समाधान देता रहा। अनेक लोगों ने जीवन संबंधित जिज्ञासाएं कीं, उन्होंने हर जिज्ञासा के खुलते पंखों को सहज समाधान का आकाश दिया। इस अंक में आचार्य तुलसी की 18वीं पुण्यतिथि पर सुधी पाठकों के लिए उनके जीए गए निजी प्रसंगों को दिया जा रहा है, जिनमें उनके सपनों का रंग है। संकल्पों की ऊंचाई है। संवाद का निर्झर है, संवाद की पारदर्शिता है, साधना की पवित्रता है और हमारे नाम प्रेरणाभरा संदेश है।

प्रश्न : हर आदमी के जीवन का कोई सपना होता है। क्या आपने भी कोई सपना देखा है? यदि हां, तो क्या वह साकार हो गया है?

उत्तर : मैंने निद्रावस्था में बहुत अधिक सपने नहीं देखे, पर मेरे दिवास्वप्नों की सूची बहुत लंबी है। मैंने जितने स्वप्न देखे, शायद कम लोग देख पाते हैं। सच तो यह है कि स्वप्न-द्रष्टा ही कुछ कर सकता है। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि मेरे द्वारा देखे गए अनेक सपने फलवान बने हैं। मेरे सब तप्न सच हो गए, यह तो मैं नहीं कह सकता। किंतु मेरा विश्वास चिंतन, निर्णय और क्रियान्विति की समन्विति में है। इन तीनों में कालक्षेप हो जाए तो स्वप्न के फलित होने में संदेह रहता है। मैंने कोई एक स्वप्न देखा हो तो उसकी चर्चा की जा सकती है। मेरा स्वभाव यह बन गया कि एक स्वप्न फलवान बनता है, उसके साथ ही कई नये स्वप्न उग आते हैं। इसी कारण कुछ लोग मेरी पहचान 'स्वप्न-द्रष्टा आचार्य' के रूप में करते हैं।

प्रश्न : जिस समय आप आचार्य बने, संघ-विकास के लिए आपके मन में क्या परिकल्पनाएं थीं और उत्तरकाल में उनका क्या स्वरूप रहा?

उत्तर : उस समय कल्पनाओं और संभावनाओं का यह उन्मुक्त आकाश मेरे सामने नहीं था। मैं एक छोटे-से दायरे में बंधा हुआ था और उसी सीमा में सोचता था। पूज्य कालूगणी ने अपने अंतिम समय में मुझे कहा—'यह संघ तुम्हारी शरण में है। इसकी पूरी सार-संभाल रखना तुम्हारा दायित्व है।' बस, मैं अपने कर्तव्य की सीमा यहीं तक समझता था। इसलिए इसी कार्य में संलग्न हो गया। हमारा धर्मसंघ प्रारंभ से ही संगठित और सुव्यवस्थित था, अतः उसमें किसी नये उन्मेष की कल्पना मेरे मस्तिष्क में नहीं थी। मेरे चिंतन का एक ही बिंदु था कि मेरे पूर्वाचार्यों ने जिस रूप में संघ का विकास किया है, मेरे कारण उसमें किसी प्रकार का अंतर न आ जाए।

उस समय का वातावरण भिन्न था, मानदंड भी भिन्न थे, इसलिए कुछ नया सोचने और करने का अवकाश भी नहीं था। उस समय हमारी जो

शिक्षा थी, उसे हम पर्याप्त मानते थे। व्याकरण में 'भिक्षुशब्दानुशासन', काव्य में 'शांतिनाथ महाकाव्य' और दर्शन में 'षड्दर्शनसमुच्चय' का अध्ययन करने के बाद हमने सोचा कि हम बहुत पढ़ लिये। हां, साध्वियों की शिक्षा के बारे में अवश्य एक चिंतन था। इसके लिए मुझे पूज्य कालूगणी का संकेत प्राप्त था। इसलिए मेरे मन में साध्विवर्ग की शिक्षा के लिए विशेष तड़प थी और अविलंब मैंने वह कार्य प्रारंभ भी कर दिया।

साधना के क्षेत्र में किसी नई साधना का हमारा लक्ष्य नहीं था। अपनी साधुचर्या से हमें संतोष था। मेरी समझ में हमारे संघ जैसा विकास अन्यत्र दुर्लभ था। वह युग श्रद्धा-प्रधान था और हमारे परिपार्श्व का वातावरण भी श्रद्धा से अनुप्राणित था। कोई बहुत लंबी-चौड़ी बात हमने न सोची और न सुनी। उस स्थिति से थोड़ा आगे बढ़ने पर मुझे प्रतीत हुआ कि हम स्थितिपालक हैं। हमारी शिक्षापद्धति प्राचीन है। साधना की दृष्टि से जो आयाम खुलने चाहिए, वे नहीं खुल रहे हैं। यह चिंतन दायित्व संभालने के पांच-सात साल बाद उभरा। तेरापंथ का विरोध प्रारंभ से ही होता रहा है। मेरे युग में भी उसमें कमी नहीं आई। विरोध से एक प्रेरणा मिली और हमने अपनी सीमा से बाहर झांककर देखा। उस समय मुझे शिक्षा की कमी बहुत अखरी। कुछ दूसरे व्यक्तियों ने भी नई संभावनाओं के संबंध में चर्चा की। कुल मिलाकर वि. सं. 2000 तक मैं कल्पनालोक में उतर चुका था।

एक दिन कुछ साधुओं को आमंत्रित कर मैंने कहा—'युग इतना आगे बढ़ रहा है और हम लोग जहां के तहां खड़े हैं। अभी हमारे पास एक भी साधु ऐसा नहीं है जो शुद्ध हिंदी में प्रवचन कर सके, संस्कृत में लिख या बोल सके और किसी बौद्धिक गोष्ठी में अपने विचार दे सके। क्या मैं कल्पना करूं कि तुम लोगों में से कोई कवि, वक्ता, लेखक आदि बन सकेगा? क्या अपने संघ में बौद्धिकता का विकास संभव है?' मेरी यह बात उनको लग गई। उसके बाद कुछ साधुओं ने विभिन्न क्षेत्रों में गति की। उनकी गति का वेग बढ़ा और इतना बढ़ा कि लोगों को आश्चर्य होने लगा।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मैं अधिक काल्पनिक बनता गया। मेरी परिकल्पनाओं में स्वयं का निर्माण, अपने अध्ययन का विकास, साधु-साध्वियों की शिक्षा, साहित्य-सर्जन, प्रचार-प्रसार, जैनदर्शन का आधुनिक रूप में प्रस्तुतीकरण, आगम-संपादन, समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, नया मोड़, स्वाध्याय की रुचि का निर्माण, साध्वियों का नेतृत्व, अध्ययन की नई विधाओं का विकास, अध्यात्म की गहराई में प्रवेश आदि अनेक बातें थीं।

संघ की आंतरिक व्यवस्थाओं के संबंध में भी मेरी अनेक कल्पनाएं थीं। कुछ कल्पनाओं को उसी समय आकार मिल गया और कुछ धीरे-धीरे साकार होती रहीं। हमारे चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने इस दिशा में बहुत परिष्कार किया था। फिर भी कुछ बातें अमुक-अमुक युग में होने की होती हैं। मैं अपने धर्मसंघ की मौलिक मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखता हुआ सामयिक मूल्यों की स्वीकृति के पक्ष में हूं। इसी चिंतन के आधार पर मैंने अपने करणीय कार्यों का एक प्रारूप तैयार किया और उसकी क्रियान्विति में मुझे मंत्रीमुनि मगनलालजी स्वामी का पूरा समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हुआ। पता नहीं वे नये युग के थे या पुराने युग के, पर मेरे युगीन चिंतन को उन्होंने सदा महत्त्व दिया और मेरा संपूर्ण धर्म-परिवार मेरे कार्य में सहयोगी रहा।

प्रश्न : अपने शासन-काल में आपने जो कल्पनाएं कीं, वे सारी साकार हो चुकी हैं अथवा कुछ अवशेष भी हैं?

उत्तर : सारी कल्पनाओं को आकार मिलने की बात तब पूरी हो, जब मैं नई कल्पनाएं न संजोऊं। एक कल्पना पूरी होने से पहले ही नई कल्पनाएं उभर आती हैं और उनकी शृंखला इतनी लंबी हो जाती है कि विचार-यात्रा का हर पड़ाव अपूर्ण-सा प्रतीत होने लगता है। अब भी मैं नई-नई कल्पनाओं के ताने-बाने बुन रहा हूं और मुझे अनुभव होता है कि वे सब धीरे-धीरे सत्य में बदल रहे हैं। अभी मेरी प्रमुख कल्पनाएं ये हैं–मैं अपने साधु-संघ को योग-प्रधान अर्थात् साधना-प्रधान देखना चाहता हूं। साधना प्रधान का अर्थ यह नहीं कि शिक्षा, साहित्य, धर्म-जागरण आदि में अवरोध आ जाएगा। मेरे विचार से ये उपक्रम जीवन के लक्ष्य नहीं, साधन हैं। जीवन का लक्ष्य है–समता और समाधि। वर्तमान युग में टूटती हुई आस्था का प्रभाव साधु-संघ पर भी संभावित है। शास्त्र और गुरुजन आस्था का केंद्र होते हैं। उन पर आस्था हो, इससे भी अधिक आवश्यक है अध्यात्म के प्रति अटूट आस्था का निर्माण। आध्यात्मिक आस्था का अभाव बहुत बड़े दुर्भाग्य का सूचक है। इस दृष्टि से मैं अपने धर्मसंघ को अध्यात्म से अनुप्राणित देखना चाहता हूं। आगमों का अध्ययन भी हम इसी परिप्रेक्ष्य में कर रहे हैं। अभी आचारांग के पारायण से अध्यात्म के अनेक रहस्य उद्घाटित हुए हैं। अध्यात्म-विकास का मेरा यह स्वप्न जिस दिन पूरा होगा, मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा।

शिक्षा की नई-पुरानी सब विधाएं हमारे संघ में विकसित हों, यह भी मेरी एक कल्पना है। इसके साथ मैं यह भी चाहता हूं कि श्रावक समाज में कुछ ऐसे विद्वान तैयार हों, जो जैन-दर्शन के प्रतिनिधि बन सकें। साधु और श्रावक के बीच एक तीसरी श्रेणी का स्वप्न भी मैं वर्षों से देख रहा हूं। इन स्वप्नों की पूर्ति में मैं अपने पुरुषार्थ और शुभचिंतकों के सहयोग की अपेक्षा रखता हूं।

प्रश्न : आप अपने धर्मसंघ के भविष्य के बारे में क्या सोचते हैं?

उत्तर : मुझे अपने धर्मसंघ का भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे रहा है। धर्मसंघ के उज्ज्वल भविष्य का सबसे गूढ़ हेतु है कि हम रूढ़ नहीं हैं। हम ज्वार को भी मानते हैं और भाटे को भी स्वीकार करते हैं। द्रव्य और पर्याय, शाश्वत और सामयिक, स्थायित्व और परिवर्तन–इन सबकी सम्यक अन्विति जहां होती है, वहां हर युग की सहमति उपलब्ध हो जाती है। मैं मानता हूं कि आने वाला युग बड़ा टेढ़ा है, पर न जाने कितने टेढ़े युग हमारे संघ ने पार कर दिए हैं। इसलिए इसके भविष्य में मेरी आस्था है। मैं मानता हूं कि हमारे धर्मसंघ की नींव किसी शुभ समय में कुशल शिल्पी द्वारा डाली गई है। इसका मूल इतना सुदृढ़ है कि वह कभी हिल नहीं सकता। कई बार इसके सामने ऐसी स्थितियां आईं, जिनसे कुछ लोगों के मन प्रकंपित भी हुए। लेकिन स्थितियां स्वयं बदल गईं और संघ को आंच तक नहीं आई। भविष्य में भी कठिन-से-कठिन परिस्थितियां आ सकती हैं। उन्हें पार करने के लिए हमें प्रयत्नशील रहना है और धर्मसंघ का गौरव बढ़ाना है।

प्रश्न : अपनी योजनाओं की क्रियान्विति के समय आपके सामने बहुत बाधाएं उपस्थिति हुई हैं, उस समय आपकी मन:स्थिति कैसी रही?

उत्तर : मैं अपने जीवन में बहुत अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं के मध्य से गुजरा हूं। जब कभी मेरे सामने प्रतिकूल परिस्थितियां उपस्थित होती हैं और अधिक भयंकर रूप से उपस्थित होती हैं तो कुछ क्षणों के लिए मेरे मस्तिष्क पर एक बोझ-सा आ जाता है। मुझे अनुभव होता है कि मैं अंधकार में खड़ा हूं। किंतु यह स्थिति अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। थोड़े समय बाद ही अंधकार आलोक बनकर मेरा मार्ग प्रशस्त कर देता है और मैं परिस्थितियों के प्रतिकार के लिए सजग हो जाता हूं।

मैंने अपने अतीत के अनुभवों के आधार पर जीवन को एक नई परिभाषा दी है। उसके अनुसार जीवन वह है, जिसमें नये-नये संघर्ष एवं नई-नई बाधाएं आएं और व्यक्ति उनके साथ जूझता हुआ आगे का मार्ग तय करता जाए। 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्'—यह वाक्य मेरे भीतर गूंजता रहता है। इसलिए मुझे निष्क्रिय जीवन जीने में रस नहीं है। मैं अपनी योजनाओं की क्रियान्विति में जिन प्रयोगों और प्रक्रियाओं को काम में लेता हूं, उनके संबंध में एक स्पष्ट रूपरेखा तैयार करता हूं और अपने सहयोगियों के साथ परामर्श भी करता हूं। अपने चिंतनशील सहयोगियों से मुझे बहुत-बहुत आशाएं हैं। मेरी उलझन के समय मेरा सबसे बड़ा आलंबन है पूज्य गुरुदेव कालूगणी की स्मृति। इससे मुझे नया मार्ग मिलता है, प्रेरणा मिलती है, बल मिलता है और मैं अपने संतुलन को स्थिर रखता हुआ कठिन परिस्थितियों से नये अनुभव लेकर आगे बढ़ जाता हूं।

प्रश्न : अपनी योजनाओं की क्रियान्विति के समय आपके सामने बहुत बाधाएं उपस्थित हुई हैं उस समय आपकी मन:स्थिति कैसी रही?

उत्तर : किसे देना चाहिए इसका श्रेय! कुछ समझ में नहीं आता। किसी एक तत्त्व का नाम बताऊंगा तो प्रश्न समीचीन रूप से उत्तरित नहीं होगा। मेरी दृष्टि में इसका सर्वाधिक श्रेय मिलना चाहिए पूज्य गुरुदेव कालूगणी को, जिन्होंने प्रारंभ से ही मेरा निर्माण किया। मैं मानता हूं कि मेरे जीवन में जो कुछ है, सब उनका ही दिया हुआ है। उन्होंने मुझे संतुलित जीवन जीने का प्रशिक्षण दिया। अति हर्ष और विषाद, अति श्रम और विश्राम आदि अतियों से बचे रहने के कारण मैं आज भी अपने आपको तारुण्य की दहलीज पर खड़ा अनुभव कर रहा हूं।

मेरी इस स्थिति में सहायक तत्त्व है पचीस-तीस वर्ष से किया जाने वाला यौगिक अभ्यास। कुल मिलाकर योगासन, खाद्य-संयम, लंबी यात्राएं और उनसे प्राप्त अनुभव—इनको मैं अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का हेतु मानता हूं।

इस श्रेय का कुछ हिस्सा मैं अपने साधु-साध्वियों को भी देना चाहूंगा। वे मुझे काम में इतना उलझाया हुआ रखते हैं कि मैं भी निकम्मा नहीं रहता। कर्मशील व्यक्ति स्वस्थ और प्रसन्न रह सकता है, इस विश्वास के साथ मैं सतत निर्माण-कार्य में लगा रहता हूं और प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

एक तत्त्व का और उल्लेख करके मैं इस विषय को संपन्न करना चाहूंगा। वह तत्त्व है—मानसिक प्रसत्ति। मैं अपने जीवन के क्षणों को अधिक से अधिक प्रसत्तिमय देखना चाहता हूं और स्वीकार करता हूं कि अतिआशा तथा निराशा—इन दोनों स्थितियों में रहने वाला संतुलन मानसिक प्रसन्नता का सबसे बड़ा रहस्य है। कुछ वैयक्तिक और सामूहिक तत्त्व और भी हैं, जिनको उक्त संदर्भों में समाविष्ट किया जा सकता है।

प्रश्न : आपके मन, वचन और कर्म में जो तरुणिमा है, उसका श्रेय किसे देना चाहिए?

उत्तर : मेरे संदेश का पहला सूत्र है—अवस्था और बुढ़ापा दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। इसलिए अवस्था को बुढ़ापा न माना जाए। यह माना हुआ बुढ़ापा व्यक्ति को निष्क्रिय बना देता है। अवस्था के साथ वृद्धत्व का गठबंधन नहीं है, इस सत्यता को स्वीकार कर जीवन को नये-नये उन्मेषों से अनुप्राणित रखना चाहिए।

मेरे संदेश का दूसरा सूत्र है—खाद्य-संयम। मैंने अनुभव किया कि खाद्य-संयम जीवन का सच्चा मित्र है। मैंने इसका अभ्यास किया है और वर्तमान में भी कर रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस सूत्र को लेकर चलने वाला व्यक्ति अनेक दृष्टियों से लाभान्वित होता है।

तीसरी बात है—समय का सदुपयोग। मैंने समय का बहुत उपयोग किया है। मेरा क्षण-क्षण किसी अच्छे कार्य में लगे, यह मेरी तीव्र भावना है। साधु-साध्वियों ने भी इस सूत्र को पकड़कर अपने जीवन में काफी परिवर्तन किया है। श्रावक समाज में अभी तक मैं इसकी कमी अनुभव करता हूं। इसलिए उन्हें विशेष रूप से कहना चाहूंगा कि वे भगवान महावीर के सूक्त—'समयं गोयम! मा पमायए' को जीवन-विकास का सूत्र बनाकर समय का उपयोग करना सीखें।

प्रश्न : आप अपने धर्मसंघ और देश के नाम क्या संदेश देना चाहते हैं?

उत्तर : देश के नाम अपने सार्वजनिक संदेश में मैं कहना चाहूंगा कि व्यक्ति-व्यक्ति अपने जीवन का निर्माण करने के लिए संकल्प-बद्ध हो। संसार-निर्माण की कल्पना अतिकल्पना है, व्यामोह है। इस व्यामोह को तोड़कर व्यक्ति-सुधार की दृष्टि से वातावरण निर्मित किया जाए। देश में बढ़ती हुई हिंसक परिस्थितियों के संदर्भ में अहिंसा का मूल्य प्रतिष्ठित करने के लिए यह अनुकूल अवसर है।

अहिंसा एक ऐसा तत्त्व है, जिसमें समग्र विश्व के हित, सुख और कल्याण की संभावनाएं निहित हैं। समाज में अहिंसा और अपरिग्रह के मूल्य प्रस्थापित होने के बाद बहुत-सी सामयिक समस्याएं स्वयं निरस्त हो जाती हैं। लोक-चेतना के परिष्कार और संस्कारों की उच्चता के लिए जनता स्वयं जागृत होकर नैतिक मूल्यों के उन्नयन में संलग्न हो।

मेरे संदेश का आदि, मध्य और अंतिम बिंदु यही है। ❐

सपनों से निकलते सपने

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो नई लकीरें खींचने की अपार क्षमता रखते हैं। कुछ व्यक्तियों की आस्था पहले से खींची हुई लकीरों पर चलने में होती है। नए का व्यामोह और पुराने की पकड़—ये दोनों स्थितियां विकास में बाधक हैं। जो व्यक्ति नित नया करने की सोचते हैं, पर उसके परिणामों को नहीं देखते, वे सफल नहीं होते। जो अपनी प्राचीन परंपराओं के संरक्षण में नए को सर्वथा अस्वीकार कर देते हैं, वे भी सफल नहीं होते। सफलता उनका वरण करती है, जो नए और प्राचीन के बीच में सेतु बनाना जानते हैं। उपलब्धियों के शिखर पर आरोहण वे करते हैं, जो सामंजस्य की कला में निष्णात होते हैं। कल्पना के कैनवस पर यथार्थ के रंग वे भरते हैं, जो समन्वय के मर्म को समझते हैं। स्वप्न को सत्य में वे बदलते हैं, जो अनवरत पुरुषार्थ की परिक्रमा करते हैं।

एक अनोखा सपना

स्वप्न दो प्रकार के होते हैं—जागृत अवस्था में देखा जाने वाला सपना और अर्ध-सुषुप्ति में देखा जाने वाला सपना। ईसवी सन् 1990 का प्रारंभ। जनवरी की ठिठुरानेवाली सर्द रातें। ब्राह्ममुहूर्त का समय। एक बहन ने सपना देखा—'उन्नत भाल और चमकीली आंखों वाला कोई पुरुष। उसके हाथों में चमकता हुआ चांदी का पात्र। बड़े-बड़े पनीले मोतियों से भरा है वह पात्र। तेजोमय दीप्ति वाला वह पुरुष मोती बो रहा है।' बहन के लिए वह सपना बहुत सुखद था। स्वप्न आगे चलता, उससे पहले ही उसकी आंखें खुल गईं। उसने उठकर इधर-उधर देखा। वहां न तो कोई पुरुष था और न रजत पात्र था। न मोती थे और न कोई बोने वाला था। उसने पलकें बंद कर एक बार फिर वह दृश्य देखना चाहा। उसकी चाह पूरी नहीं हुई। वह दिन भर स्वप्न के संबंध में सोचती रही। उसे कोई समाधान नहीं मिला।

दूसरे दिन बहन ने मेरे सामने स्वप्न की चर्चा की। अष्टांग निमित्त में स्वप्न भी एक है। न तो मुझे स्वप्न विद्या का कोई ज्ञान है और न इस विषय में

मेरी विशेष अभिरुचि ही है। स्वप्नों का संसार होता भी विचित्र है। अश्रुत और अदृष्ट दृश्य स्वप्न में साक्षात दिखाई देते हैं। अधिकांश सपने स्मृति से फिसल जाते हैं। कुछ सपने आंशिक रूप में याद रहते हैं। उनके प्रति अधिक उत्सुकता नहीं रहती। कोई-कोई सपना ऐसा होता है, जो ज्यों-का-त्यों आंखों के सामने तैरता रहता है। उसका फल जानने की उत्सुकता रहती है। स्वप्न-पाठकों की परंपरा इसी मनोवृत्ति की सूचना देती है।

स्वप्न देखने वाली बहन के मन में जिज्ञासा थी, आतुरता थी। मैंने उससे कहा–'यदि तुम्हारे स्वप्न का कोई गहरा अर्थ है तो मैं नहीं जानती। इसका एक अर्थ मुझे साफ-साफ दिखाई देता है।' यह बात सुन उसकी उत्सुकता बढ़ गई। वह बोली–'इसका जो अर्थ आपकी समझ में आता है, वही मुझे समझा दीजिए।' मैंने कहा–'तेजोमय दीप्ति वाला वह पुरुष और कोई नहीं, युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी है। रजत पात्र की तुलना योगक्षेम वर्ष से होती है। प्रशिक्षण और प्रयोग के मोतियों से भरा है वह पात्र। मोतियों का वपन हो रहा है चतुर्विध धर्मसंघ रूपी धरती में। बोलो, तुम्हारे स्वप्न की सब बातें मिली या नहीं?' बहन उस अपूर्व स्वप्न की स्मृति मात्र से अभिभूत हो गई।

हिमालय पर आरोहण

आचार्यश्री तुलसी के बारे में स्वप्न देखने वालों की कोई कमी नहीं है। उनके शिष्य और अनुयायी ही नहीं, अन्य लोग भी उनसे बहुत आशाएं रखते हैं। आचार्यश्री के व्यक्तित्व का जिन लोगों पर प्रभाव है, उनकी अपनी आकांक्षाएं हैं। जो लोग उनके कर्तृत्व से परिचित हैं, उनकी आशाएं भी कम नहीं हैं। धर्म का क्षेत्र हो या राजनीति का, राष्ट्रीय समस्याएं हों या अंतरराष्ट्रीय, आचार्यश्री के चिंतन में मौलिकता का दर्शन होता है। भगवान महावीर का अनेकांत दर्शन उनकी विचारयात्रा का मूलभूत आधार है। उनकी चेतना पर महावीर वाणी उत्कीर्ण है। मानव मन के अनुत्तरित सवालों की धुंध में वे समाधान का उजाला फैलाते हैं। यही कारण है कि उनके बारे में एक-से-एक खूबसूरत सपने देखे जा रहे हैं।

आचार्यश्री स्वयं महान स्वप्नद्रष्टा हैं। उनका नेतृत्व छोटे-बड़े अनेक सपनों को सहेजे हुए हैं। उनके सपने उनींदी आंखों के सपने नहीं हैं। नींद के सपनों में अवचेतन मन का प्रतिबिंब रहता है। आचार्यश्री के सपने चेतन मन के फलक पर उभरते हैं। उनमें रंग भरना बहुत सरल नहीं होता। स्वप्न को सच करने की प्रक्रिया अनेक चुनौतियों से भरी हुई होती है। संकल्प श्लथ हो तो सपना केवल सपना ही बनकर रह जाता है। पर आचार्यश्री का संकल्प इतना फौलादी होता है कि वह टूटता नहीं। कठिनाइयां आती हैं और पार हो जाती हैं। स्वप्न को साकार करने में सहयोगी बननेवालों के मन पर निराशा की बदलियां मंडराती हैं, पर आचार्यश्री की प्रेरणा का पवन इतना प्रबल होता है कि निराशा छंटती है, काम करने का उत्साह जागता है और दुर्गम हिमालय से लगने वाले सपने पर आरोहण हो जाता है।

एक महान आश्चर्य

मनुष्य का जीवन यथार्थ और कल्पनाओं का संयम है। कल्पना का आकाश कितना ही विशाल क्यों न हो, यथार्थ की धरती पर ही पांव टिकते हैं। आचार्यश्री ने धर्मसंघ, समाज, राष्ट्र और विश्व को सामने रखकर अनेक कल्पनाएं कीं, अनेक सपने देखे। उन कल्पनाओं और सपनों को यथार्थ में बदलने के लिए उन्होंने विशिष्ट ऊर्जा का संचय किया। ऊर्जा का उपयोग करने की भी एक कला होती है। उस कला से परिचय न हो तो ऊर्जा का प्रवाह दूसरी दिशा में बह जाता है। आचार्यश्री ऊर्जा बटोरने में जितने दक्ष हैं, उसके उपयोग में भी उतने ही निष्णात हैं। एक धर्मसंघ के संपूर्ण व्यवस्थापक्ष से जुड़े रहकर भी उन्होंने अपनी सृजन चेतना की धार को कभी भोंथरा नहीं होने दिया। उनकी सृजनयात्रा के रोमांचक अनुभव नए सृजन की प्रेरणा देने वाले हैं।

सामान्यतः मनुष्य में तीव्र जिजीविषा होती है। वह किसी भी स्थिति में जीना चाहता है। आचार्यश्री में चिकीर्षा की तीव्रता है। वे सकारात्मक और सक्रिय जीवन में विश्वास करते हैं। उनके सामने छोटा या बड़ा, किसी प्रकार का काम हो, वे पूरी तन्मयता के साथ उसमें जुटते हैं। उनकी तन्मयता छोटे-से-छोटे काम को भी महत्त्वपूर्ण बना देती है। एक ओर साधु-साध्वियों के निर्माण का काम, दूसरी ओर साधु-साध्वियों की लेखन एवं वक्तृत्व क्षमता के विकास की आकांक्षा। एक ओर बच्चों के संस्कार-निर्माण की चिंता, दूसरी ओर जैन विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक अनुशास्ता का दायित्व। एक ओर लोकजीवन में सदाचार की प्रतिष्ठा का प्रयास, दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा के प्रशिक्षण की योजना। एक ओर आगम साहित्य का संपादन, दूसरी ओर नए साहित्य का सृजन। प्रवचन और जनसंपर्क तो उनकी दिनचर्या के अभिन्न अंग हैं ही। एक व्यक्ति के नेतृत्व में एक साथ इतनी प्रवृत्तियों का संचालन, संपादन और समायोजन अपने आप में एक महान आश्चर्य है।

क्रियान्विति में अवरोध के कारण

आचार्यश्री चिंतन, निर्णय और क्रियान्विति में होने वाले विलंब को पसंद नहीं करते। उनकी सोच अविलंब निर्णयात्मक बिंदु पर पहुंच जाती है। निर्णय के बाद क्रियान्विति में यत्र-तत्र अवरोध भी आते हैं। इसके तीन कारण हो सकते हैं—

1. जिस निर्णय की क्रियान्विति करनी है, उसके लिए उपयुक्त साधन-सामग्री की कमी।
2. साधु समाज और श्रावक समाज में उस कार्य के प्रति निष्ठा, जागरूकता और उत्साह की कमी।
3. जो काम हाथ में लिया, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने की सुविधा अथवा समसामयिक अन्य अपेक्षाओं का दबाव।

कारण कुछ भी हो, इससे कुछ काम अधूरे रह जाते हैं, कुछ विलंब से पूरे होते हैं और कुछ दूसरी शक्ल ले लेते हैं।

आचार्यश्री के सामने आज भी कुछ ऐसे काम हैं, जिन्हें वे पूरी शक्ति का नियोजन कर तत्परता के साथ करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आचार्यश्री ने कुछ ऐसे सपने देखे हैं, जो अब तक पूरे नहीं हुए हैं, पर पूर्णता के बिंदु तक पहुंचने की प्रतीक्षा में हैं। अच्छा तो यह होता उन सपनों के बारे में आचार्यश्री स्वयं अपना वक्तव्य देते। संभवतः वे किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में हों। मैंने जितना कुछ जाना और समझा है, उसके आधार पर आचार्यश्री के कुछ सपनों को शब्द देने का प्रयास कर रही हूं।

आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण

योगक्षेम वर्ष मनाने का एक उद्देश्य था आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्वों का निर्माण। एक वर्ष तक सघन प्रयास चला। कुछ काम हुआ। पर वांछित परिणाम नहीं आया। आ भी नहीं सकता। एक प्रतिमा का निर्माण भी कितना श्रम मांगता है। फिर मनुष्य या व्यक्तित्व का निर्माण तो और अधिक समयसाध्य तथा श्रमसाध्य काम है। आचार्यश्री का अभिमत है कि पढ़ने से न तो विज्ञान आता है और न अध्यात्म। जब तक ये जीवनस्पर्शी नहीं बनते हैं, आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो पाएगा।

निश्चय और व्यवहार की समन्विति

तेरापंथ धर्मसंघ के साधु-साध्वियों की जीवनशैली विशिष्ट हो, इसके लिए आवश्यक है निश्चय को समझना और जीना। व्यवहार की भूमिका पर जो उपलब्धियां होती हैं, वे निश्चय के अभाव में प्रभावी नहीं बन सकतीं। कुछ आचार्य केवल निश्चय पर बल देते हैं। भगवान महावीर ने निश्चय के साथ व्यवहार को भी मूल्य दिया। सामूहिक साधना में व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। पर निश्चय को गौण कर व्यवहार को ही सब कुछ मान लेना खतरे से खाली नहीं है। निश्चय नय आत्मा को ही सब कुछ मानता

है। व्यवहार नय दृश्य तत्त्व के आधार पर चलता है। इन दोनों के बीच का रास्ता निकले। निश्चय और व्यवहार को एक साथ जीने की कला का विकास हो, आचार्यश्री का यह चिंतन है।

समणश्रेणी की व्यापकता

जैन परंपरा में आध्यात्मिक साधना की दो श्रेणियां निश्चित हैं—साधु और श्रावक। आचार्यश्री ने एक नई श्रेणी स्थापित की। साधु और श्रावक के बीच सेतु बननेवाली उस श्रेणी की पहचान समण श्रेणी के रूप में हुई। इस श्रेणी में अनेक बहन-भाई दीक्षित हैं। वे शिक्षा, साधना और प्रचार-प्रसार के काम में संलग्न हैं। समाज के अधिक-से-अधिक लोग इस श्रेणी में आकर लाभान्वित हों, इस दृष्टि से सावधिक समण दीक्षा का भी प्रावधान है।

विद्यार्थी, सामाजिक कार्यकर्ता और सभा-संस्थाओं के पदाधिकारी कम-से-कम एक वर्ष के लिए समण दीक्षा स्वीकार करें, यह आचार्यवर का एक सपना है। कई देशों में यह व्यवस्था है कि स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थी अनिवार्य रूप से एक वर्ष सेना में प्रशिक्षण लें अथवा गांवों में जाकर सेवा करें। इसी प्रकार पंद्रह-बीस वर्ष शिक्षा में लगानेवाले विद्यार्थी एक वर्ष के लिए समण दीक्षा भी स्वीकार करें। इस अवधि में वे जैनदर्शन का गंभीर अध्ययन करें, संयम और सादगीपूर्ण जीवनशैली का प्रशिक्षण प्राप्त करें। ध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा आदि का अभ्यास भी उनके लिए आवश्यक है। इस क्रम से वे अपने समग्र व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक सभा-संस्थाओं में सेवा देने वालों के लिए भी यह उपक्रम उपयोगी है। इस उपक्रम के द्वारा पके हुए अधिकारी और कार्यकर्ता अपना काम अधिक दक्षता से संपादित कर सकेंगे। एक विकल्प यह भी हो सकता है कि कार्यकर्ता जब तक सभा-संस्थाओं में काम करें, समणश्रेणी में रहकर ही करें। इससे आगे-पीछे की सब चिंताओं से मुक्त होकर काम लिया जा सकेगा।

कर्मणा जैन : एक नया उपक्रम

जैनधर्म महान है। इसके सिद्धांत महान हैं। देश के प्रबुद्ध लोग इसमें विश्वधर्म की क्षमता का दर्शन करते हैं। व्यापकता की इस स्थिति में भी वह एक जाति या कौम विशेष तक सीमित है। ऐसा क्यों? आचार्यश्री के मन में इस बात को लेकर गहरी चिंता है। उसके लिए अनेक बार प्रयास हुए। बगड़ी मर्यादा महोत्सव से इस संदर्भ में एक उपक्रम प्रारंभ हुआ। प्रायोगिक रूप में कहीं-कहीं काम भी हो रहा है। पर इस काम में जैसी गति आनी चाहिए, वह नहीं आ पा रही है। कुछ निष्ठाशील कार्यकर्ता इस महान उद्देश्य की संपूर्ति में दीर्घकालिक योजना के साथ काम करें तो यह सपना पूरा हो सकता है।

जैन विश्वविद्यालय में विलक्षणता

जैन विश्वभारती को मान्य विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त होना विश्व इतिहास की प्रथम घटना है। यह विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयों की अनुकृति मात्र बनकर रह गया तो इसका वैशिष्ट्य क्या रहेगा? इसमें कुछ विलक्षणता रहे, इस दृष्टि से आचार्यश्री का चिंतन है—

- यह विश्वविद्यालय डिग्रीप्रधान न होकर, व्यक्तित्वनिर्माण प्रधान हो।
- इसका पाठ्यक्रम अहिंसक समाज की संरचना में संप्रेरक रहे।
- इसके अधिकारी, प्राध्यापक, विद्यार्थी, कर्मचारी आदि प्रेक्षाध्यान से प्रशिक्षित और उसका अभ्यास करनेवाले हों।
- इसके स्टाफ में सब व्यक्ति अणुव्रती और सादगीपूर्ण जीवन के प्रति आस्थाशील हों।
- सभी जैन संप्रदायों के लोग इसे अपना विश्वविद्यालय मानकर इसके विकास से संभागी बनें।

विदेशों में जैनधर्म का व्यवस्थित प्रचार

विदेशी लोगों में जैनधर्म के प्रति जिज्ञासा है, आकर्षण है। वे भोगप्रधान जीवन शैली से ऊब रहे हैं। अब वे बदलाव चाहते हैं। उनकी दृष्टि अध्यात्म पर टिक रही है। वे लोग अध्यात्मप्रधान संस्कृति और जैनधर्म के सिद्धांतों से परिचित हों, इस दृष्टि से सुनियोजित कार्यक्रम की अपेक्षा है।

विदेश में जैनधर्म के प्रचार की संभावनाओं पर जब से आचार्यश्री का ध्यान गया, काम प्रारंभ हो गया। आचार्यश्री के निर्देशानुसार समण-समणियों के वर्ग वहां काम कर रहे हैं। विदेशी भाषाओं में साहित्य-निर्माण का काम भी हो रहा है। अन्य संप्रदायों के साधु-साध्वियां भी वहां पहुंची हैं। पर आचार्यश्री की कल्पनाएं बहुत बड़ी हैं। उनको आकार देने के लिए एक पंचवर्षीय या सप्तवर्षीय योजना बनाकर काम किया जाए तो प्रचार के नए क्षितिज उन्मुक्त हो सकते हैं।

जैन एकता की संपुष्टि

विगत कई वर्षों से जैन एकता के प्रश्न को गंभीरता से लिया जा रहा है। आचार्यश्री के मन में इसे लेकर व्यवस्थित रूपरेखा है। उसका स्वरूप यह है–

सांप्रदायिक परंपराओं, मान्यताओं और आस्थाओं की सुरक्षा अपने-अपने तरीके से होती रहे। पर जैनधर्म के मौलिक सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार सभी संप्रदाय एकरूप में करें।

- जैन परंपरा के सर्वमान्य पर्वों को सब जैन सामूहिक रूप में मनाएं।
- जैनधर्म में कहीं भी आक्षेप-प्रक्षेप हो, उस पर आंच आए तो सब मिलकर उसका सही प्रतिकार करें।
- जैन संप्रदायों में प्रमोद भावना का विकास हो। किसी संप्रदाय में कोई विशेषता हो तो दिल खोलकर उसे उजागर करने का प्रयत्न करें।
- ओसवाल, पोरवाल, सरावगी, श्रीश्रीमाल, दस्सा, बीसा आदि जाति या गोत्र संबंधी मुद्दों को लेकर जैन लोगों में किसी प्रकार का विभाजन न हो।
- जैन साधुओं और श्रावकों के लिए एक-एक न्यूनतम आचार-संहिता का निर्धारण हो। उसका अतिक्रमण होने पर जैन मंच की ओर से व्यवस्थित कार्यवाही हो।
- किसी भी संप्रदाय के आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप न करें। विशेष स्थिति में कुछ करना आवश्यक हो तो प्रेमभाव से कोई सुझाव दिया जा सकता है।
- जैन मंच को शक्तिसंपन्न बनाया जाए। सभी संप्रदायों के आचार्यों का बल उसे मिले। वह एक शक्ति के रूप में उभरे और प्रभावी ढंग से काम करे।

सामूहिक अनुष्ठान

आचार्यश्री के सात सपनों की यहां चर्चा की गई है। वे सपने बहुत बड़े नहीं हैं तो बहुत छोटे भी नहीं हैं। असाधारण नहीं तो साधारण भी नहीं हैं। ये ऐसे स्वप्न हैं, जिनको साकार करना केवल आचार्यश्री के ही हाथ में नहीं है। ये सपने समूह से जुड़े हुए हैं। मानव जाति के साथ इनका रिश्ता है। जैन समाज का इनसे संबंध है। इनकी नियति तेरापंथ से भी बंधी हुई है। इन्हें साकार करने के लिए सबको अपने-अपने दायित्व का वहन करना है। एक व्यक्ति कोई काम करता है, उसमें समय और श्रम अधिक लगता है। उसी काम को अनेक लोग मिलकर करें तो कम समय और कम श्रम में भी सफलता मिल जाती है।

आचार्यश्री के संकल्प का मंदराचल बहुत ऊंचा है। उससे जो अपार्थिव रोशनी चारों ओर फैलती है, उसमें हजारों-लाखों लोग अपना पथ पा सकते हैं। आचार्यश्री का कर्तृत्व उनके सपनों को आकार देने में सक्षम है। ऐसी क्षमता जन-जन में जागे। यह एक सामूहिक अनुष्ठान है। इसे हम सब मिलकर पूरा करें और इसके लाभों से पूरी मानव जाति को उपकृत करें। ❑

आपका जाना हर रोज अखरता है

पद्मचन्द पटावरी

आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी वर्ष को प्रतीक मानकर जहां पूरा देश और समाज आपश्री के अवदानों को याद कर सादर कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा है वहां इस वर्ष में आपश्री की वार्षिक पुण्य तिथि का आगमन हर श्रद्धालु मानस को विचित्र मनःस्थिति से गुजरने के लिए जैसे बाध्य कर रहा है।

यादों का झरोखा खुला पड़ा है जब हमने प्रत्यक्षतया देखा था एक ऐसे हरफन मौला संत पुरुष को जिन्होंने धार्मिक जगत की रूढ़तापूर्ण वर्जनाओं को तोड़ने की सिर्फ हुंकार ही नहीं भरी थी वरन सच्चे धर्म की सरल, सुपाच्य परिभाषा भी प्रस्तुत की थी। कहने के लिए वे एक छोटे से जैन संप्रदाय तेरापंथ के आचार्य थे और अपनी (संघीय) सीमाओं और मर्यादाओं से बंधे हुए थे। उनके कंधों पर इस धर्मसंघ को नये शिखर प्रदान करने एवं अपने कर्तव्य के निर्वहन का भारी भरकम दायित्व था।

यह भी सही है कि उन्होंने अपने धर्मसंघ की रीति-नीति, मान मर्यादा व आचरण-चर्या को संपूर्ण अधिमान देते रहने के बावजूद अपनी सोच के फाटक पूरी तरह खुले रखे। बाईस वर्ष की छोटी युवा उम्र, वह भी उस जमाने की यानी आज से आठ दशक पूर्व जब शिक्षा, दीक्षा, ज्ञान-विज्ञान के साधन बहुत कम विकसित थे आपने धर्मसंघ की बागडोर संभाली। आपके गुरुवर्य परम श्रद्धेय आचार्यश्री कालूगणी ने आप पर अगाध विश्वास किया। इतिहास गवाह है कि आप अपने आराध्य के विश्वास पर शत-प्रतिशत खरे उतरे, सिर्फ खरे ही नहीं उतरे वरन उस भरोसे को कई गुना अधिक चरितार्थ कर धर्मसंघ एवं समूचे जैन शासन को कई गुना अधिक चरितार्थ कर धर्मसंघ एवं समूचे जैन शासन को चमत्कृत कर दिया।

आपश्री का दृढ़ अभिमत था कि धर्म सिर्फ धर्म स्थानों व मत-मतांतर में बंध कर यदि रहता है तो वह धर्म का सही स्वरूप नहीं है। आप फरमाया करते संप्रदाय तो धर्माचरण को संरक्षित करने के माध्यम मात्र होते हैं। धर्म का दीपक तो प्रत्येक आत्मा में प्रज्वलित होता है। हर आत्मा में परमात्मा बनने की असीम शक्ति होती है जो जात-पांत, ऊंच-नीच, रंग-भेद आदि में बंधकर नहीं रहती।

आप यहीं तक नहीं रुके। आपने दो कदम और आगे जाकर कहा कि जो धर्म वर्तमान को प्रभावित न कर सके, सच्चा रास्ता न दिखा सके वरन सिर्फ परलोक को ही सजाने-संवारने में लगा रहे वह धर्म क्षेत्र के आधे अधूरे प्रयास से अधिक नहीं है। आपने पुरजोर शब्दों में कहा कि यदि व्यक्ति धार्मिक है पर नैतिक नहीं, उसका आचरण नैतिक मूल्यों से ओत-प्रोत नहीं। वह धर्म स्थान में कुछ है और घर, परिवार, दुकान और समाज में बिलकुल उलट-भिन्न है यह कैसा धर्म, यह कैसी धार्मिकता। यह तो बिलकुल विचित्र और विरोधाभासी स्थिति है।

आपके मन-मस्तिष्क में धर्म के व्यावहारिक और वास्तविक स्वरूप की परिकल्पना संभवतः इसी विरोधाभासी सोच को देखकर प्रकट हुई होगी और इसे

ही अणुव्रत आंदोलन का सूत्रपात कहा जा सकता है। एक विराट रियेक्शन था जो समाधायक एक्शन के रूप में धार्मिक जगत के समक्ष प्रस्तुत हुआ। एकबारगी तो सबको आश्चर्य हुआ होगा, आशंकाएं भी उठी होंगी कि एक छोटे से जैन संप्रदाय के आचार्य इस प्रकार का दुस्साहस क्यों कर कर रहे हैं—क्या वे अपनी सीमाओं का अतिक्रमण तो नहीं कर रहे हैं। कहीं उनके मन में यह लोभ तो नहीं जाग गया है कि इस बहाने वे अपने संप्रदाय का विस्तार कर लेंगे। इन्हें किसी के वार्तमानिक जीवन पर टीका-टिप्पणी करने की जरूरत कहां आ पड़ी है। क्यों वे समाज की दुखती रगों पर हाथ रखकर नई वेदना पैदा कर रहे हैं। इन ढेर सारी आशंकाओं के घनघोर बादल उमड़-घुमड़ रहे थे पर उस फौलादी संकल्प के धनी संतपुरुष ने विशुद्ध मन और नेक नीयत से अणुव्रत की सर्वजन हिताय सोच जनता के समक्ष रखी। बाधाएं उन्हें विचलित नहीं कर सकीं। वे किंचित भी न घबराये न रुके। अंततः जनता ने इस अभियान को स्वीकृति दी। इसके महत्त्व को समझने की कोशिश की। राष्ट्रपति भवन से गरीब की झोपड़ी तक इसकी अनुगूंज सुनाई पड़ने लगी। स्वयं अनुशास्ता गांव-शहर, गली-कूचों में पैदल घूमते रहे। आपने एक लाख कि.मी. से अधिक की देश व्यापी पदयात्राएं इसी उद्देश्य से की एवं नैतिक मूल्यों की आवाज बुलंद करते हुए मानव को सच्चे अर्थ में मानव बनने की प्रेरणा दी। आपका श्रम क्रमशः साकार होता गया। अणुव्रत राष्ट्रीय आंदोलनों में सिर्फ अगुआ ही नहीं रहा वरन सिरमौर बन गया। लाखों-करोड़ों देशवासियों ने *अहिंसा पर आधारित अणुव्रत आचार संहिता को सम्मान* दिया, स्वीकृति दी। अणुव्रत की आवाज सात समंदर पार तक भी पहुंची। दुनिया ने उस संतपुरुष के मिशन का लोहा माना। सचमुच गुरुदेव तुलसी द्वारा अपनी टीम के साथ किया गया यह महनीय प्रयास सार्थक सिद्ध हुआ और निरंतर अपनी उपादेयता बनाये रखे हुए हैं।

आचार्यश्री तुलसी का जीवन विविध आयामी व्यक्तित्व की बोलती तसवीर है। आपने जिस क्षेत्र में कदम रखे वह क्षेत्र सक्रिय सजग और क्रियाशील बन गया। धर्मसंघ की यदि बात करें तो यह कहते हुए गर्व होता है कि आपने संघ की युवा शक्ति और मातृ शक्ति को जो दिशा दी, जिस प्रकार से कार्यकारी बनाया यह इतिहास की अनमोल थाती है। आपका मिशन सदैव कार्यकर्ता शक्ति को समृद्ध करने में लगा रहा। आप मानते थे कि जिस संगठन, समाज और आंदोलन के पास प्रशिक्षित, समर्पित कार्यकर्ताओं की सुदृढ़ पंक्ति नहीं है वह मिशन चिरजीवी नहीं हो सकता, उसकी दीर्घजीविता पर प्रश्नचिह्न लगेंगे ही? इसलिए आपकी रचनाधर्मिता सदैव कार्यकर्ता शक्ति पर केंद्रित रही। आपने अपने निकटस्थ साधु-साध्वी परिवार में भी सजग, कर्मशक्ति पंक्ति निर्मित की। श्रावक-श्राविका समाज में हजारों-हजारों कार्यकर्ताओं को दिशा-दर्शन, शुभ दृष्टि प्रदान कर उन्हें अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया। कार्यकर्ता को प्यार देना कोई गुरुदेव तुलसी से सीखे। आपने जिस पर भरोसा किया उसे कभी भंवर में ले जाकर नहीं छोड़ा वरन अंत तक उसका साथ दिया उसे संभाला और उपयोगी बनाये रखा।

विचित्र संयोग है कि आज पूरा देश और विश्व उस महामानव संतपुरुष की जन्मशताब्दी को समायोजित कर रहा है। हर दिन गुरुदेव तुलसी की स्मृतियां जन-जन के स्मृति प्रकोष्ठों में केंद्रित हो रही हैं। हर मोड़ पर गुरुदेवश्री तुलसी की अनुपस्थिति का एहसास हो रहा है। जन्मशताब्दी वर्ष में आपकी 18वीं पुण्यतिथि का आगमन उस न्यूनता और खालीपन को और अधिक उजागर कर रहा है। मन में जहां सात्विक संतोष है कि इस शताब्दी को ऐसे युग पुरुष का सान्निध्य प्राप्त हुआ वहां उनका चले जाना बार-बार अखरता है। कल का सा दिन लगता है जब गुरुदेव हमारे सामने हुआ करते थे। हम सब आपश्री के चरणों में बैठकर अपने जीवन की गुत्थियां सुलझाने के समाधान पाया करते थे। पर अब तो हकीकत साफ है कि वे सशरीर हमारे बीच नहीं हैं।

हम आपश्री की स्मृतियों के स्तंभों को और ऊंची मंजिलें प्रदान करते रहें। आपश्री के अवदानों को धर्मसंघ समाज और अपने वैयक्तिक जीवन में प्रतिष्ठा देते रहें। यही इस पुण्यतिथि का पावनप्रेरक संदेश हो सकता है। ❐

जैन शिक्षा एवं एकता के प्रतीक – तुलसी

प्रोफेसर भोपाल चन्द लोढ़ा

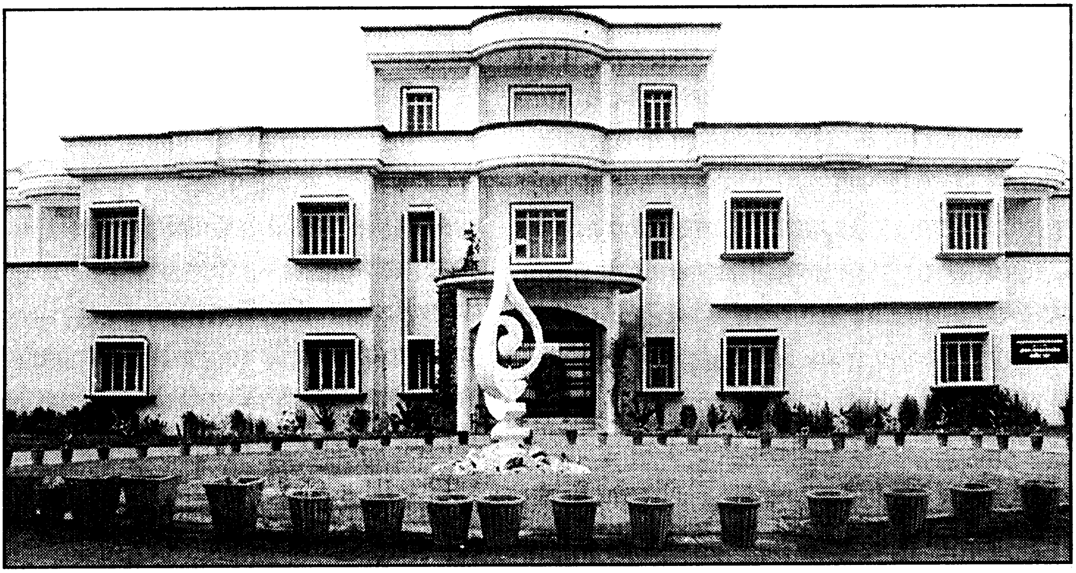

जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं

आचार्य तुलसी अध्यात्म जगत के एक ऐसे क्रांतिकारी महापुरुष थे, जिन्होंने विविध आयामों से धर्म–संघ को विकास के शिष्टाचार पर प्रतिष्ठित किया। यह महामानव एक विविध आयामी बहुमुखी व्यक्तित्व का धनी था। जैनधर्म की कठोर परिधि में रहते हुए उन्होंने सामाजिक चेतना में एक उत्क्रांति की और शिक्षा को नए आयाम दिये। वे प्रचंड विद्वान, कुशल शिक्षाविद् एवं दूरदर्शी चिंतक थे। उन्होंने वर्तमान शिक्षा को नकारा नहीं, परंतु उसे अपर्याप्त माना, क्योंकि उसमें भारतीय आध्यात्मिक संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों का समावेश नहीं था। उनकी सोच थी कि प्राच्य एवं जैन विद्या में वे तत्त्व भरे पड़े हैं जिनसे शिक्षा के साथ नैतिकता का विकास हो सकता है और समाज में जाग्रति आ सकती है। वे आधुनिक विज्ञान के भी विरोधी नहीं थे, बल्कि वे पूरे मन से प्राच्य एवं जैन विद्या तथा विज्ञान के समन्वय–सामंजस्य के प्रबल समर्थक थे।

गहन चिंतन, मनन एवं शोधन से वे प्राच्य विद्या को प्रतिष्ठित करने हेतु एक के बाद एक नये उच्चस्तरीय आयाम साकार करते गये। सफलताएं उन्हें इस कारण भी मिलती थीं, क्योंकि उनका मूल दृष्टिकोण था कि किसी कार्य में आगे बढ़ने से पूर्व अपनी और अपने संघ की पूरी तैयारी हो। अपने संघ के विशिष्ट साधु–साध्वियों को आध्यात्मिक शिक्षण से शिक्षित–प्रशिक्षित करने हेतु उन्होंने विद्वानों के सहयोग से पाठ्यक्रम तैयार किये, जो शिक्षा के अनेक आयामों के अतिरिक्त आगम संपादन जैसे कठिन कार्य को करने में भी मील का पत्थर साबित हुए।

वे प्रकांड विद्वान थे शिक्षा के निरंतर विकास के लिये आगे से आगे सोचते चले गए व आगे बढ़ते गए। अपनी दक्षिण पैदल यात्रा के समय वे विश्वविद्यालयों के विद्वानों के गहन संपर्क में आये। वहां के शिक्षा व अनुसंधान के वातावरण में उनके मन में एक विचार उभरा–'भारत की प्राच्य विद्याओं पर शोध करने के लिये एक संस्थान की अपेक्षा है।' उन्होंने विचार किया कि जैन आगम व धर्म-दर्शन का अध्ययन करने हेतु अगर व्यवस्था, सुविधा उपलब्ध हो तो दर्शन को व्यापकता दी जा सकती है। उनके मन में जो विचार आता उस पर वे अपनी पूर्ण तैयारी से क्रियान्वित करने हेतु अग्रसर होते। इस विचार के फलस्वरूप 1970 में जैन विश्वभारती का उदय हुआ। वे चाहते थे कि यह संस्था जैनविद्या की कामधेनु बने। उन्होंने अपने प्रबुद्ध श्रावक-समाज को इसके लिये प्रोत्साहित किया और यह संस्था जैन शिक्षा के विकास के लिये आगे बढ़ने लगी। संस्कृत, प्राकृत, जैनविद्या, आगम, योग विद्या, आदि विषयों पर अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान की तैयारी होने लगी। इस संस्था ने, आगमों के शोधन का जो कार्य आचार्यश्री एवं महाप्रज्ञजी के द्वारा चल रहा था, के प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य भी अपने हाथों में ले लिया। ये कार्य ही आगे चल कर जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) बनने के आधार बने।

जैन प्राच्य विद्या व दर्शन का आधार है तीर्थंकर महावीर की वाणी अर्थात् उनका दर्शन। लेकिन जैन धर्म-दर्शन आत्म-केंद्रित होने के कारण और विशिष्ट ज्ञान को सार्वजनिक न करने की भारतीय परंपरा के कारण भी यह ज्ञान गुरु-चेले तक यानी कि साधु-साध्वियों तक ही सीमित रहा और यही परंपरा इसके प्रसार में बाधक बनी। अतः यह दर्शन बौद्धधर्म की तरह विश्व में फैल नहीं सका।

तुलसी की सोच इस परंपरा से भिन्न थी। उन्होंने विचार-क्रांति की। वे आगमों का शोधन, संपादन एवं उन्हें आज की भाषा में प्रकाशित कर इस महत्त्वपूर्ण ज्ञान को, जीवनमूल्यों के साथ समाहित कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे, ताकि जैनदर्शन विश्व के लिये उपयोगी हो सके। इस विचार का प्रथमतः विरोध हुआ, लेकिन वे रुके नहीं और आगमों का शोधन व प्रकाशन निष्पक्ष भाव से करते गए।

कार्य बहुत कठिन था। उपलब्ध साधन सीमित थे। संपादन का अनुभव भी कम था, फिर यह कार्य साधु-साध्वियों को करना था, जिन्हें मुनिचर्या का निर्वहन करते हुए तथा एक स्थान पर स्थिर न रह कर विचरण करते-करते इतना विशाल कार्य संपन्न करना था, लेकिन वे और उनके विद्वान संत विशेषकर महाप्रज्ञजी और मुनि दुलहराजजी दृढ़ संकल्प से आगे बढ़ते गये, ऊंची से ऊंची मंजिल उन्हें मिलती गई। ज्यों-ज्यों कार्य संपन्न होता गया, उसका प्रकाशन भी जैन विश्वभारती द्वारा होना प्रारंभ हो गया।

जिस उच्चस्तर का यह कार्य हुआ, उससे वे स्वयं पूर्ण आश्वस्त थे, इसलिये इसका विमोचन 1987 में दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्वयं आचार्यश्री तुलसी की सन्निधि में आयोजित किया गया। इस श्रुतोत्सव समारोह की अध्यक्षता तत्कालीन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (आयोग) के वाइस चेयरमैन डा. सच्चिदानन्द मूर्ति ने की। उनके अतिरिक्त इसी आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डी.एस. कोठारी, जो स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी अनेकांत, स्याद्वाद व जैनदर्शन के विख्यात विद्वान थे एवं अनेक विशिष्ट विद्वान भी उस समय उपस्थित थे। प्रकाशित आगमों की गहराई व स्तर देखकर ये विद्वान अत्यंत भावविभोर हो गये। उनको आश्चर्य हुआ कि आगम-शोधन व संपादन जैसा दुरूह कार्य इतने उच्चस्तरीय रूप में, इतने कम समय में, साधु-साध्वियों ने अपनी साधुचर्या में रहते हुए कैसे कर दिया? वे सब तुलसी के प्रति नतमस्तक हो गये। डा. सच्चिदानन्द मूर्ति ने गंभीर होकर यहां तक कह दिया कि यह कार्य तो एक विश्वविद्यालय बनने का ठोस आधार है। आपको एक जैन विश्वविद्यालय बनाना चाहिए। आचार्यश्री डा. मूर्ति के इस महत्त्वपूर्ण विचार से न सिर्फ उत्साही हुए, उन्होंने इस बात को मन

में साध लिया। डा. मूर्ति जैन नहीं थे, दर्शन के क्षेत्र में देश के जाने-माने विद्वान थे, ऐसे विशिष्ट पुरुष ने जब प्राच्य विद्याओं के विकास के लिये एक विश्वविद्यालय का विचार दिया तो आचार्यश्री ने इसे क्रियान्वित करने की ठान ली। कल्पना विरल, पर बहुत महत्त्वपूर्ण थी और उसे प्रत्यक्षतः प्रस्तुत करना अत्यंत दुष्कर कार्य था।

तीर्थंकर महावीर के बाद उस समय तक जैन समाज ने कभी जैन विद्या का एक विश्वविद्यालय बनाने का कोई स्थान नहीं लिया था। बौद्धधर्म के अनुयायियों ने ईसा के बाद चौथी शताब्दी में नालन्दा विश्वविद्यालय बना लिया, जो 12वीं शताब्दी तक लगभग 800 वर्षों तक चला, पर जैन समाज इस विषय पर उदासीन ही रहा। तुलसी ने जब यह कल्पना आगे रखी तो साकार करने के लिये मुख्य रूप से आगे आये—उनके निकटतम शिष्य मुनि महाप्रज्ञजी और फिर जुड़ी साध्वीप्रमुखा महानिर्देशिका कनकप्रभाजी, मुनि महेन्द्र कुमारजी, कई प्रबुद्ध श्रावक व जैन विश्वभारती के पदाधिकारी। जहां इस विरल विचार के कई समर्थक थे, तो कई विरोधी भी थे। विरोध करने वालों का कहना था कि दर्शन उपासना के लिये है। जैन विद्या का अध्ययन और उस पर अनुसंधान उनकी सोच से परे था। उन्हें डर था कि जैन विद्या पढ़ने कौन आयेगा। आयेगा तो उसका भविष्य क्या होगा। उसे नौकरी कहां मिलेगी। यह तो सच है कि जैन स्वयं अपने बच्चों को जैन विद्या पढ़ने के लिए भेजने में आज भी मुश्किल से तैयार होते हैं, लेकिन उनकी यह धारणा कि नौकरी कहां मिलेगी, अज्ञानता थी। देश में जैन विद्वानों का (साधु समाज को छोड़) हमेशा टोटा रहा है। आज से करीब 45 वर्ष पूर्व भारत में 30 विश्वविद्यालयों में जैन चेयर स्थापित हुई थीं, लेकिन वे सभी खाली रह गईं, क्योंकि जैन विद्वान उपलब्ध न हो पाये।

कैसी विडंबना है। जिस धरती पर महावीर ने जन्म लिया, जैन दर्शन दिया, जहां आज भी सैकड़ों विद्वान जैन साधु-संत विचरते हैं, वहां शिक्षा के क्षेत्र में जैन विद्वानों की इतनी कमी कि देश के एक मात्र जैन विश्वविद्यालय को भी कभी पर्याप्त जैन विद्वान उपलब्ध नहीं हो पाये। जैन दर्शन इतना महत्त्वपूर्ण है कि आज पश्चिमी देशों में ही कम से कम 100 उच्चस्तर के विद्वान विश्वविद्यालयों में कार्यरत हैं।

विरोध सिर्फ आंतरिक ही नहीं था। भारत सरकार के भी कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकारी इस विचार का विरोध कर रहे थे और अड़चन डाल रहे थे। संघर्ष काफी चला, लेकिन आदरणीय श्रीचन्दजी रामपुरिया (जैन विश्वभारती संस्थान के प्रथम कुलाधिपति बने) ने कहा—आचार्य तुलसी के लिये किसी भी करणीय कार्य की दुष्करता उनके लिये दुर्बलता नहीं बनी। उनके अदम्य पौरुष का श्रेष्ठतम स्वरूप कठिनतम कार्यों को संपादित करने में उद्भाषित होना था। उनका दृढ़ संकल्प केवल एक बात जानता था—यदि कार्य करणीय है तो उसे होना ही है। जैन विश्वभारती संस्थान उसी कल्पना का साकार स्वरूप है। अथक कोशिशों के कारण, जिसमें श्री रतनलालजी कोठारी का कार्य उल्लेखनीय है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कई विद्वानों को निरीक्षण हेतु लाडनूं भेजा। आचार्यश्री ने सभी को आश्वस्त कर दिया। अंत में आयोग ने जैन विश्वभारती को मान्य विश्वविद्यालय बनाने की अपनी अनुशंसा भारत सरकार को भेज दी। वहां पर भी काफी कोशिशों के बाद मान्यता प्रदान कर दी गई, यही नहीं, तेरापंथ के आचार्य को इस संस्थान के अनुशास्ता रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया, यह आचार्य तुलसी के ज्ञान, शैक्षणिक व शोध की उपलब्धियों की मान्यता थी।

तुलसीजी की सोच देश में एक और विश्वविद्यालय जोड़ने की नहीं थी, अपितु सोच थी कि यह एक सबसे भिन्न, एक आदर्श, नैतिक चेतना का उत्कर्ष जैन विद्या का संस्थान बने। इसके लिंये पहले से ही इसका प्रारूप तैयार किया गया। शैक्षणिक प्रवृत्तियों के लिये जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन; प्राकृत एवं जैनागम; जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग, अहिंसा, अणुव्रत और शांति अध्ययन जैसे—विषयों के पाठ्यक्रम की तैयारी की, जो कहीं और जगह नहीं थे। उच्चस्तरीय अनुसंधान

के लिये अनेकांत शोधपीठ, एक विशाल और विशेष पुस्तकालय एवं अन्य व्यवस्थाएं इसके साथ जोड़ी गईं। इस प्रकार 20 मार्च, 1991 को तुलसी के पुण्य प्रताप से उनके सान्निध्य में जैन विश्वभारती संस्थान मान्य विश्वविद्यालय का लाडनूं में उदय हुआ।

तुलसी का दृष्टिकोण हमेशा सर्वधर्म समभाव एवं अनेकांत दृष्टि का रहा। इसी उद्देश्य से उन्होंने इस संस्थान का विधिवत लोकार्पण शांति के नोबल पुरस्कार से सम्मानित बौद्धधर्म के गुरु महामहिम दलाईलामा से करवाया। इस तरह श्रमण संस्कृति की दोनों ही महान विभूतियों का मिलन और उनके विचार वह संस्थान की धरोहर बन गये। यह तुलसी का इस संस्थान को कितना बड़ा योगदान था।

संस्थान बनने के उपरांत कई समस्याएं सामने आईं। विशेष रूप से विद्वान शिक्षकों को ढूढ़ना, इन विषयों के लिये विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना, वित्त आदि की व्यवस्था करना।

आचार्यश्री के दिशा-निर्देश से संस्थान बनने से काफी पहले मुमुक्षुओं के अध्ययन के लिए ब्राह्मी विद्यापीठ की स्थापना कर दी गई थी। स्नातक डिग्री तक का यह शिक्षण संस्थान प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा-पद्धतियों का समन्वयात्मक रूप था। इस विद्यापीठ से निकले स्नातकों को उन्होंने उच्च शिक्षा लेने हेतु, विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने हेतु प्रोत्साहित किया। इस निर्णय से संस्थान को जैनदर्शन में पूर्ण आस्था रखने वाले त्यागी विद्यार्थी मिल गये। जिन्होंने कई कीर्तिमान स्थापित किये। फिर उनमें से कई विदुषी साध्वियां बन गईं और अधिकतर विदुषी समणियां। आचार्य प्रवर के प्रोत्साहन से इस समणिवृंद ने एम.ए., एम.एस.सी., पीएच. डी. कर जहां संस्थान की विद्वान शिक्षक की कमी को पूरा किया, वहीं देश-विदेश में जाकर जैन शिक्षा को आगे बढ़ाया। इस समणिवृंद ने देश-विदेश में गोष्ठियों-सम्मेलनों में भाग लेकर व पुरस्कृत होकर संस्थान का नाम भी उज्ज्वल किया। उन्होंने इनको यह शिक्षा व प्रोत्साहन भी बार-बार दिया कि जहां विद्वत्ता के क्षेत्र में तुम्हें गार्गी और मैत्रेयी बनना है, वहीं संस्थान कैसे चलता हैं, इसे गहराई से भी समझना है और इतना तैयार होना है कि एक दिन तुम स्वयं इसे संभाल सको।

उनकी प्रेरणा ऐसी होती थी कि हृदय को छू ले। समणिवृंद ने सिर्फ संस्थान में ही प्रगति नहीं की, विदेशों में भी कीर्तिमान स्थापित किये। एक ने तो लन्दन विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि हासिल की और वहां पीएच. डी. में दाखिला लिया, एक दूसरी ने फ्लोरिडा विश्वविद्यालय(यूएसए) में अध्यापन भी किया तथा जैन विश्वभारती संस्थान का नाम उज्ज्वल किया।

आचार्यश्री की शिक्षा के अनुरूप समणी वर्ग ने इतनी तैयारी कर ली कि उन्होंने इसी विश्वविद्यालय के कुलपति के पद को भी सुशोभित कर दिया। एक समणीजी ने महावीर के 2600वें जन्मशताब्दी वर्ष में इंग्लैंड के करीब आठ विश्वविद्यालयों में अनेकांत विषय पर भाषण दिये और जैनदर्शन की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

वित्त की समस्या आज हर अच्छे विश्वविद्यालय की है। इस संस्थान को भी रही, लेकिन तुलसी के पुण्यों का प्रताप है कि कार्य चल रहा है और संस्थान प्रगति कर रहा है।

तुलसी संस्थान में अच्छे से अच्छे कुलपति लाने का प्रयास करते रहे। पहले चार कुलपतियों का चयन-निर्णय उनके जीवनकाल में हुआ। इस विषय पर मुझसे भी गहन विचार विमर्श कई बार होता रहा। बहुत सावधानी से वे निर्णय लेते थे। इस कार्य के लिए वे काफी समय भी देते थे।

नैतिक स्तर ऊंचा रहे, इसके लिये जहां उन्होंने संस्थान को महावीर की वाणी से लिया: 'णाण्स्ससारमायारो'–ज्ञान का सार है आचार जैसा प्रतीक दिया, वहीं इस सिद्धांत की क्रियान्विति के लिए आदर्श छात्र-छात्रा सम्मान का विचार दिया और संस्थान के प्रांगण में आने वालों, पढ़ने वालों व पढ़ाने वालों सबके लिये एक नैतिक आचार-संहिता का निर्माण किया। संस्थान मूल्यपरक शिक्षा का केंद्र बने, इस पर बहुत जोर दिया। इस विषय पर अनेक कार्यक्रम

व गोष्ठियां होती रहीं, जिनमें वे स्वयं ज्यादातर उपस्थित रहते। संस्थान ने इस क्षेत्र में इतनी प्रगति की कि इसको देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा नैतिक शिक्षा की नोडल एजेंसी स्वीकार किया गया।

संस्थान का शैक्षणिक वातावरण ऊंचा बना रहे, इसके लिये वे अनेक विषयों पर निरंतर शोध करवाने की प्रेरणा देते रहे और यथासंभव स्वयं उसमें भाग लेते रहे। विषय भी ज्यादातर वे स्वयं सुझाते थे। संस्थान में विद्वानों के आने-जाने का तांता लगा रहे तथा उनके भाषण होते रहे, इसकी वे स्वयं कोशिश करते रहते।

जिस संस्थान का बीजारोपण तुलसी जैसे महामानव के दिशा-निर्देश में हुआ हो, वो निरंतर प्रगति न करे, ऐसा कैसे हो सकता है। मेरे ही कार्यकाल में जैन विद्या व जीवन विज्ञान विषयों पर पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू किये गये, जिससे हजारों छात्र-छात्राओं को इन विषयों की शिक्षा मिली। इसमें जैन-अजैन ने उन्मुक्त भाव से भाग लिया। इस पाठ्यक्रम की कुछ विशेष उपलब्धियां भी रहीं। आम विद्यार्थियों के अतिरिक्त जैनधर्म के विभिन्न संप्रदायों के सैकड़ों साधु-साध्वियों ने इस माध्यम से जैन दर्शन की शिक्षा पाई व डिग्रियां भी हासिल की। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाये जाने के कारण सभी संप्रदायों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और यह कार्यक्रम जैन एकता का प्रतीक बन गया। दूसरा इस कार्य ने संस्थान की वित्तीय स्थिति में भी महत्त्वपूर्ण सुधार किया। यह कार्य बहुत बड़ा व मुश्किल था। इसे करने में एक तरफ जहां आचार्य प्रवर के दिशा निर्देश से कई साधु-साध्वियों व समणिवृंद का और दूसरी तरफ संस्थान के शिक्षकों व प्रशासनिक अधिकारियों का अथक परिश्रम व महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

तुलसी नारी शिक्षा के प्रबल सूत्रधार थे। शायद यही कारण बना कि मेरे कार्यकाल में आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय का निर्माण भी इस संस्थान में हुआ और उसकी प्राचार्या भी हमेशा समणिवृंद ही बनीं, जिनका निर्माण इसी संस्थान में किया गया था।

यह संस्थान आचार्य तुलसीजी के जन्म स्थल गांव लाडनूं में, जहां तपस्या और साधना की ऊर्जा व परमाणु फैले हैं, में अवतरित हुआ। लाडनूं चूकि राजस्थान के रेगिस्तान का एक गांव है, इसलिए बहुतों को खला और आज भी खलता है। पर मेरी दृष्टि में शिक्षा व अनुसंधान के इस केंद्र के लिये, शहरों के गंदे माहौल से दूर लाडनूं जैसा शांत व शुद्ध वातावरण ही चाहिए था।

मूल विचार था कि इस प्रांगण को तुलसी ग्राम में विकसित किया जाये, जहां सारी आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जायें-एक अध्यात्ममय स्वर्ग जैसा ग्राम, जैसा कि ब्रह्मकुमारियों के अनुयायियों ने माउंट आबू के जंगलों की पहाड़ियों के बीच अपना विश्वविद्यालय बनाया है।

आचार्य तुलसी में श्रद्धा रखने वालों की कमी नहीं है, मुझे आशा है उनके जन्मशताब्दी के इस वर्ष में वे विचार करेंगे और इस प्रांगण को स्वर्ग रूपी तुलसी ग्राम में अवतरित करेंगे। इस संस्थान को चलाने में किसी भी तरह की कमी नहीं आने देंगे। यही उस महापुरुष के प्रति, जिसका यह संस्थान सर्जित हैं, सच्ची श्रद्धांजलि होगी। साथ ही मैं एक सावधानी रखने के प्रति विनयपूर्वक आग्रह करना चाहता हूं कि इस संस्थान का जन्म जैनविद्या के विकास के लिये हमारी मांग पर हुआ है और उसी के लिये मान्यता मिली है। इसमें बदलाव नहीं हो सकता। समय-समय पर बहुत दबाव आते रहे हैं कि कुछ जॉब ओरियेंटेड कोर्सेज चलाये जाएं। ऐसा न तो कानूनी रूप से संभव है, न ही उन उद्देश्यों की रक्षा के लिये उचित, जिसे तुलसी ने संजोया था तथा अथक प्रयास किया था। हमें सजग रहना होगा।

अंत में मैं यही कहूंगा कि यह संस्थान, जो आचार्य तुलसी के नेतृत्व, कर्तृत्व एवं तपस्या की जीवंत कहानी है, जहां मुझे भी कुछ कर गुजरने का सौभाग्य मिला है निरंतर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर प्रगति करता रहे। युगों-युगों में कभी एक पैदा होने वाले इस महान यशस्वी तपस्वी, तेजस्वी, आचार्य तुलसी के शताब्दी वर्ष पर श्रद्धा समर्पित कर मैं अत्यंत गौरव का अनुभव करता हूं। (पूर्व कुलपति, जैन विश्वभारती, विश्वविद्यालय)

❑

समाधान के दर्पण में

जहां जीवन है, वहां समस्या है। जहां समस्या है, वहां समाधान भी है। समस्या का सर्जक मनुष्य है तो इसका समाधान भी मनुष्य के मस्तिष्क में है। जिस समाज और देश में इस प्रकार की आस्था जीवित है, वह कभी निराश होकर नहीं बैठता। जिस देश की आंखों में समस्याएं ही समस्याएं रहती हैं, जिसको समाधान की राह दिखाई नहीं देती, वहां अनास्था का स्वर मुखर होता है। अनास्था ऐसा कीट है, जो देश की चेतना को भीतर ही भीतर खोखला बना देता है। ऐसे देश में रहने वाले लोग इस बात को भूल जाते हैं कि जो चढ़ते हैं, उनको उतरना भी पड़ता है। चढ़ाव और उतार के भी अपने सिद्धांत हैं। सिद्धांतहीनता की राजनीति न तो व्यक्ति को सही रूप में समस्याओं को देखने की दृष्टि देती है और न ही इनका समुचित समाधान दे पाती है। हमारा देश इस समय ऐसी ही स्थिति का सामना कर रहा है।

भारतवर्ष की आजादी में रांष्ट्रपिता महात्मा गांधी का योगदान अविस्मरणीय है। गांधीजी अपने देश को राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सांस्कृतिक गरिमा भी देना चाहते थे। उनके अपने सिद्धांत थे, अपने आदर्श थे। वे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सत्ता को विकेंद्रित रखने के पक्ष में थे। आज सत्ता या शक्ति केंद्रित हो गई है। इसके केंद्रीकरण में गांधीजी को जिन समस्याओं का आभास हुआ था, वे आक्रामक मुद्रा में खड़ी हो गई है। एक ओर देश को स्थिर, निश्चिंत और उज्ज्वल भविष्य देने के वादे दूसरी ओर समस्याओं का कसता हुआ शिकंजा। पता नहीं सत्ता और संपदा के शीर्ष पर बैठे व्यक्तियों का इन समस्याओं से कितना सरोकार है, जिनसे जनता का जीवन दूभर होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में देश की समस्याओं तथा इनके समाधान की दिशा में एक तटस्थ विश्लेषण की अपेक्षा है।

आर्थिक विषमता : आज की सबसे बड़ी समस्या है—आर्थिक विषमता। उससे संपूर्ण मानवजाति प्रभावित है। संसार भर के कुछ हजार व्यक्ति बहुत अधिक अमीर हैं। उनके पास अरबों-खरबों की संपत्ति है। जनता का बहुत बड़ा भाग आर्थिक विपन्नता का जीवन जी रहा है, इसका एक भाग ऐसा भी हैं जिसके पास दो जून खाने को रोटी नहीं है, पहनने के लिए कपड़े नहीं हैं, रहने के लिए मकान नहीं है। शिक्षा और चिकित्सा के साधन तो इनके पास होंगे भी कहां से? एक और जनता के दु:ख दर्द से बेखबर विलासिता में आकंठ डूबे हुए लोग, दूसरी ओर जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित अभावों से घिरे लोग। आर्थिक विषमता की इस धरती पर समस्याओं के नए झाड़-झंखाड़ उगते और बढ़ते जा रहे हैं। इस युग में संचार के साधन इतने विकसित हो गए कि हर व्यक्ति को एक-दूसरे की स्थिति ज्ञात रहती है। लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था और बढ़ती हुई शिक्षा ने भी आपस की दूरियां कम कर दीं। देहातों में रहने वाले लोगों का नजरिया भी बदल रहा है। भाग्यवादी अवधारणाएं बदल रही हैं। एक समय था जब लोग सत्ता और संपदा को भाग्य का फल मानकर मौन रहते थे। अब वे ही इसे शोषण के साथ जोड़ रहे हैं। शोषण का प्रतिकार करने के लिए इनमें क्रूरता और उग्रता पनप गई है। आज जहां कहीं हिंसा या आतंकवाद का वातावरण है, उसके पीछे सत्ता और संपत्ति हथियाने का मनोभाव सक्रिय है।

देश की प्रमुख समस्याएं

वोटों की राजनीति

लोकतांत्रिक शासन-पद्धति की बुनियाद है–चुनाव। लोकतंत्र में चुनाव की जो स्वस्थ प्रक्रिया है, उसे विस्मृत कर अलोकतांत्रिक साधनों का उपयोग किया जाए तो लोकतंत्र का भविष्य सुरक्षित कैसे रहेगा? मात्र चुनावी नारों और आकर्षक घोषणा-पत्र से लोकतंत्र आगे नहीं बढ़ता, वह मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा के आधार पर आगे बढ़ता है। चुनाव में धन, जाति और संप्रदाय–इन तीनों को बल मिल रहा है। इससे आगे यह भी कहा जा सकता है कि चुनाव के ये ही प्रमुख घटक हैं, इनके आधार पर चुनाव जीतने वाले विजयी होकर इनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में लग जाते हैं। संपत्ति, जाति और संप्रदाय चुनाव जीतने में सहायक बनते हैं, फिर सत्ता में आने वाले लोगों की सहायता से ये अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। यह एक ऐसा चक्र बन जाता है जो कभी टूटता नहीं है। इस चक्रव्यूह में आम जनता की समस्याओं को समझने का अवसर ही कब मिलता है? ऐसे जन-प्रतिनिधि निर्वाचित होकर भी जनता के हितों की सुरक्षा कैसे कर सकेंगे? सचमुच! आज 'चुनाव' पद्धति के आगे एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

अस्पृश्यता

हमारे देश के संविधान में छुआछूत को दंडनीय अपराध माना गया है। संविधान लागू होने के चार दशक बाद भी अस्पृश्यता के संस्कार ज्यों-के-त्यों जीवित हैं, यह कैसी विडंबना है? जब हर व्यक्ति को अपने ढंग से जीने का और व्यक्तित्व विकास का अधिकार है, तब जातिविशेष के प्रति घृणा फैलाना या अत्याचार करना क्या इस अधिकार का हनन नहीं है? स्वर्ण समाज द्वारा हरिजनों का उत्पीड़न और शोषण होना एक लज्जाजनक हादसा है। हरिजनों की सामूहिक हत्या, हरिजन महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार और इन्हें तंग करने वाली हरकतें, क्या मानवीय दृष्टि से उचित है?

देश में लगभग करोड़ों हरिजन हैं। इनका संबंध हिंदू समाज के साथ है। इनकी जो दुर्दशा हो रही है, इसका मुख्य कारण है–धर्मांधता। ये धर्मांध लोग कभी उनके मंदिर प्रवेश पर रोक लगाते हैं और कभी अन्य बहाना बनाकर अकारण ही इन्हें सताते हैं। क्या ऐसा कर इन्हें धर्म-परिवर्तन की ओर धकेला नहीं जा रहा है? क्या ऐसा होना समाज के हित में होगा? कुछ धर्मगुरु भी बेबुनियादी बातों को प्रश्रय देते हैं। जातिवाद का विष घोलते हैं और हिंदू समाज को आपस में लड़ाकर अपनी अहंवादी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं।

मादक पदार्थ

नशा आज की युवापीढ़ी का फैशन है। स्कूल, कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थी द्रुतगति से नशे के शिकार होते जा रहे हैं। सिगरेट, शराब, हेरोइन, स्मैक, चरस, गांजा, अफीम और मारफीन आदि न जाने कितनी चीजें हैं, जो एक समूची पीढ़ी को पतन के गर्त में धकेल रही है। कुछ चीजें तो इतनी नशीली और घातक हैं, जो मौत को खुला निमंत्रण देने वाली हैं। प्रश्न उठता है कि एक प्रबुद्ध और चिंतनशील पीढ़ी इसकी गिरफ्त में कैसे आ जाती है। मादक पदार्थों के सेवन में हेतुभूत कारणों का सर्वे करने के बाद जो निष्कर्ष निकले हैं, उनमें एक भी कारण ऐसा नहीं है जो नशे की अपरिहार्यता को प्रमाणित करता हो–यह उत्सुकता, अनुकरण, निराशा, तनाव, असफलता, अवसाद से छुटकारा पाने का एहसास आदि-आदि ऐसे कारण हैं, जो व्यक्ति को नशीली वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा देने वाले हैं। जबकि क्षणिक ताजगी या विस्मृति के अतिरिक्त इनके परिणाम अत्यंत भयावह रहे हैं।

मादक पदार्थों के सेवन से एक बार नाड़ी संस्थान की शिथिलता का आभास होता है। इससे व्यक्ति को राहत का अनुभव होता होगा, पर कुछ दिन इसका प्रयोग करने के बाद ये चीजें बेअसर होती जाती हैं। ऐसी स्थिति में अधिक तेज नशीले पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। जो एक गंभीर संकट बन रहा है। नशे की यह प्रवृत्ति व्यक्ति को आर्थिक और यौन अपराधों की ओर अग्रसर करती है। शारीरिक और मानसिक असंतुलन का खतरा तो वहां पग-पग पर देखा जा सकता है।

शिक्षा–नीति

भारत के सामने जो समस्याएं सिर उठाए खड़ी है, उनमें एक ज्वलंत समस्या है शिक्षानीति। समाज और राष्ट्र के विकास का मूलभूत आधार है शिक्षा। शिक्षा ही जब मूल्यहीन हो जाए तो मूल्यों की संस्कृति फलेगी किस बल पर? प्रत्येक समाज या देश का अपना शिक्षातंत्र होता है। शिक्षा का संबंध जीवन-मूल्यों से न जुड़कर साक्षरता से जुड़ता है तो विद्यार्थी का बौद्धिक विकास तो हो सकता है, पर न तो इसकी रचनात्मक ऊर्जा को नई दिशा मिल सकती है और न ही वह विषमतावादी व्यवस्थाओं में परिवर्तन की बात सोच सकता है।

शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक है, पर इससे मात्र बौद्धिक विकास होता है। जब तक विद्यार्थी का मस्तिष्क प्रशिक्षित नहीं होता उसकी करुणा और संवेदनशीलता कम होती जाती है। संवेदनहीनता की स्थिति में उदारता, सहिष्णुता, संयम आदि मानवीय गुणों का विकास नहीं हो पाता। इससे कठोर जीवन जीने का अभ्यास भी नहीं होता। कठोर जीवन जीने का अभ्यास न हो अथवा इसमें आस्था न हो तो व्यक्ति के असंतुलन का बांध बहुत जल्दी टूट जाता है और उसके पग अपराधों की ओर बढ़ने लगते हैं।

शिक्षा के व्यवस्था पक्ष का जहां तक प्रश्न है इसमें सुधार की ओर ध्यान दिया जा रहा है। स्कूल और कॉलेज में बड़े-बड़े भवन, फर्नीचर, खेल के मैदान, पाठ्य-पुस्तकें और प्रशिक्षित अध्यापक–ये सब हैं, पर शिक्षा में जीवन-मूल्यों की ओर ध्यान बहुत कम है। इसी कारण विद्यार्थी दिशाहीन हो रहे हैं। किसी भी देश का भविष्य इसके स्वर्णिम अतीत पर निर्भर नहीं होता। भविष्य का संबंध है–स्वस्थ, समुन्नत और प्रशिक्षित युवा पीढ़ी से। यह पीढ़ी जब तक सक्षम नहीं होती, नए निर्माण की बात ही नहीं सोची जा सकती। जिस देश में विद्यार्थियों को राजनीति का मोहरा बनाकर गुमराह किया जाता है, उनकी शिक्षा में व्यवधान उपस्थित किया जाता है, उस देश का भविष्य कैसा होगा, कल्पना नहीं की जा सकती?

पर्यावरण

पर्यावरण की समस्या आज जिस गति से बढ़ रही है, इस पृथ्वी पर प्राणियों का जीवन मुश्किल हो सकता है। एक ओर प्रकृति का असीम दोहन, दूसरी ओर पशु-पक्षियों का जीवन-संहार। उसमें मुख्य कारण है मनुष्य की विलासी मनोवृत्ति और व्यावसायिक बुद्धि। वैज्ञानिक लोग चेतावनी दे रहे हैं कि भूमि और जल का दोहन जिस रूप में हो रहा है, उससे आने वाले वर्षों में पानी की भयंकर समस्या उत्पन्न हो जाएगी। बड़े शहरों में गंदी नालियों का पानी साफ कर पीने की परिस्थिति आ जाएगी।

इधर प्रसाधन सामग्री के लिए मासूम और बेजुबान पशु-पक्षियों पर कहर ढाया जा रहा है, उधर हाथीदांत और सींग के लिए हाथियों और गैंडों को मारा जा रहा है। पशु-पक्षियों की हत्या पर रोक नहीं लगी तो कुछ दुर्लभ प्रजातियों के लोप होने की संभावना बढ़ जाएगी। मनुष्य की सुखवादी और सुविधावादी मनोवृत्ति कैसी क्रूरता को जन्म दे रही है। आज आवश्यकता तो इस बात की है कि देश के जंगल तो क्या, एक वृक्ष भी न कटे, वहां वृक्षों के साथ पशु-पक्षी भी कटते जा रहे हैं। क्या मनुष्य इतना संवेदनहीन हो गया है कि न तो इसे किसी की कराह सुनाई देती है और न किसी का तड़प-तड़पकर दम तोड़ना दिखाई देता है?

पर्यावरण को असंतुलित करने में आणविक अस्त्र-शस्त्रों का भी पूरा हाथ है। इस समय संसार में पचास हजार से भी अधिक परमाणु अस्त्र हैं। प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक कार्ट सैगोन एवं पाल क्रुटर्जन ने आगाह किया है कि विश्व की महाशक्तियों के पास एकत्र परमाणु हथियार का एक प्रतिशत भी प्रयोग में लिया गया तो भयंकर बरबादी होगी। मानव जाति के अस्तित्व को खतरे में डालने वाले अणु-आयुधों से शांति और समृद्धि की कल्पना पागलपन से अधिक क्या है?

समाधान की दिशा

समस्या किसी भी क्षेत्र की हो–आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक या प्राकृतिक–उन

सबका मूल है—मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थाहीनता। मानवीय मूल्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है—नैतिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य। आज आध्यात्मिक मूल्यों का स्थान सांप्रदायिक मूल्यों ने ले लिया है और नैतिक मूल्यों के स्थान पर प्रतिष्ठा और बड़प्पन के तत्त्व प्रतिष्ठित हो रहे हैं। सार्वजनिक मंच पर नैतिकता, न्याय और समता की बात उठाने वाले व्यक्ति भी जब अपने घर में झांकते हैं तो उन्हें अपना जीवन सिद्धांतहीनता के पैबंदों से भरा हुआ मिलता है। ऐसे परिवेश में मंच पर भाषण तो दिए जा सकते हैं, पर सिद्धांतों एवं मूल्यों के लिए लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

साम्यवादी और लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं का अपना-अपना संकट है। साम्यवाद में व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जाता है और लोकतंत्र में स्वामित्व विस्तार की खुली छूट है। ये दोनों ही अतियां हैं। इस अतिवाद से बचने का एक रास्ता भगवान महावीर ने सुझाया था। यह रास्ता है—इच्छाओं के अल्पीकरण का। उससे असीम लालसा नियंत्रित होती है और व्यक्तिगत स्वामित्व सर्वथा प्रतिबंधित नहीं होता। यह मध्यम मार्ग आर्थिक समस्या का एक समाधान है।

आर्थिक विषमता को कम करने का एक दूसरा तरीका है—संविभाग का। उद्योगपति के पास पूंजी होती है। वह अपनी पूंजी का निवेश कर व्यवसाय करता है। उसके व्यवसाय में सैकड़ों श्रमिक काम करते हैं। चालू परंपरा के अनुसार उनको थोड़ा-सा पारिश्रमिक मिलता है। शेष संपत्ति का मालिक व्यवसायी होता है। इस परंपरा को बदलकर व्यवसाय में श्रमिकों की भागीदारी निश्चित हो जाए तो व्यवसाय जगत में उभरने वाली हड़ताल आदि समस्याएं नहीं उभरेंगी, विषमता का अनुपात घटेगा और श्रमिकों में संतुष्टि के साथ अपनत्व का भाव बढ़ेगा।

विगत कई वर्षों से चुनाव सुधार की व्यापक चर्चा सुर्खियों में है। सरकार और विपक्ष दोनों ओर से सुधार की बात उठी है, पर अब तक सुधार का कोई रास्ता नहीं मिला है। उसमें आर्थिक, जातीय और सामुदायिक जटिलताएं हैं, चुनाव में प्रत्याशी व्यक्ति को जिस जाति का बहुमत है उसकी शरण में जाना पड़ता है। इसमें आर्थिक भ्रष्टाचार से भी बचाव नहीं हो सकता। उसके साथ चरित्रहनन और हत्या की घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं। इन सबकी रोकथाम के लिए जब तक कोई कारगर उपाय हाथ नहीं लगता, अणुव्रत की चुनाव आचार-संहिता को प्रकाशदीप मानकर एकबारगी समाधान खोजा जा सकता है। अणुव्रत ने मतदाता एवं उम्मीदवार—दोनों वर्गों के लिए आचार-संहिता का निर्धारण किया है।

छुआछूत की समस्या न कानून से मिट सकती है, न उपदेश से। उसके लिए मनुष्य के मन में जमे हुए घृणा के संस्कारों को निरस्त करना होगा, मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करना होगा और समग्र मानव जाति के प्रति सौहार्द का वातावरण निर्मित करना होगा।

विद्यार्थी-वर्ग या युवापीढ़ी को नशे की लत से मुक्त कराने के लिए भी सेमिनारों या भाषणों से सफलता नहीं मिलेगी। इसके लिए कुछ औषधियां और कुछ ध्यान के प्रयोग सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न चाहे शिक्षा-नीति का हो, पर्यावरण का हो या राजनीति और धर्म का हो, केवल राजनीति के पास उनका समाधान नहीं है, वैसे ही केवल धर्मगुरुओं के पास भी समाधान नहीं है। व्यवस्था परिवर्तन और मानसिक परिवर्तन का योग होने से ही समाधान की प्रक्रिया बैठ सकती है। व्यवस्था में सुधार का काम सत्ता के सिंहासन पर बैठे हुए व्यक्तियों का है तथा मानस परिवर्तन का काम धर्मगुरुओं का है। उनके साथ कुछ तटस्थ बौद्धिक व्यक्तियों का योग होना भी जरूरी है। व्यवस्था धर्म से प्रभावित हो, धर्म और व्यवस्था का योग मिले और बौद्धिक व्यक्ति अनुकूल वातावरण का निर्माण करे—यह त्रिकोणात्मक प्रक्रिया देश की अनेक समस्याओं का स्थाई समाधान खोज सकती है। ❑

—आचार्य तुलसी

हर समस्या का समाधान संभव

> भगवान महावीर ने साधुओं के लिए एक आचार-संहिता दी। साधु बनने की प्रथम भूमिका में घर छोड़कर अनिकेत बनना आवश्यक है। घर छोड़ने मात्र से कोई व्यक्ति साधु नहीं हो सकता। सनातन परंपरा में कुछ साधु ऐसे भी हैं, जिनके लिए गृहत्याग जरूरी नहीं है। जैन मुनि अपने घर और परिवार–दोनों का त्याग करता है। वह पांच महाव्रतों का पालन करता है। साधु की मौलिक आचार-संहिता वही है। महाव्रतों का स्वरूप यह है-अंहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। संसार में जितनी समस्याएं हैं, इनका समाधान इनमें निहित है। महाव्रत बहुत आगे की भूमिका है। अणुव्रत को आधार बनाकर जीवन जीने का संकल्प हो तो भी अनेक समस्याएं सुलझ सकती हैं।
>
> –आचार्य तुलसी

समस्या हिंसा की

मनुष्य के सामने समस्याएं क्या हैं? रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा–ये मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताएं हैं। इनकी पूर्ति के लिए अर्थ की अपेक्षा रहती है। अर्थ की उपलब्धि के दो स्रोत मुख्य हैं–नौकरी और व्यवसाय। सब लोग व्यवसायी बन सकते हैं। नौकरी सहज रूप से सुलभ नहीं होती। ऐसी स्थिति में मनुष्य क्या करे? इसे दिन-रात चिंता सताती है। चिंता इसके स्वास्थ्य को चौपट कर देती है। अस्वास्थ्य और अभाव अहम समस्या बनकर खड़े हो जाते हैं। यह समस्या बहुत लोगों के सामने है, पर आज इससे भी बड़ी समस्या है–आतंकवाद की। यह एक ऐसी समस्या है जो आगे उलझती जा रही है। इसे सुलझाने के सारे प्रयत्न असफल हो रहे हैं। कुछ लोगों की यह धारणा बन गयी है कि यह समस्या मनुष्य जाति की जिंदगी का अपरिहार्य हिस्सा बन गयी है। इसे सुलझाना संभव नहीं है। हमारा अभिमत यह है कि संसार में कोई भी समस्या ऐसी नहीं हो सकती, जिसका कोई समाधान न हो। शर्त एक ही है कि समस्या से जुड़े हुए सभी पक्ष समाधान पाने के लिए तैयार हों। भारत में पंजाब, असम और कश्मीर में आतंकवाद ने अपने पग जमाए हैं, यह स्थूल दृष्टिकोण है। शायद ही ऐसा कोई प्रांत हो, जहां आतंकवाद की घुसपैठ न हो। आतंकवादियों के मंसूबे क्या हैं, मांगें क्या हैं? इन्हें स्वीकार किया जा सकता है या नहीं? ये प्रश्न राजनीति के रंग में रंगे हुए हैं। हमारी चिंता राजनीतिक दृष्टि से नहीं, मानवीय दृष्टिकोण से प्रेरित है। हमारी दृष्टि में इस समस्या का समाधान है अहिंसा। अहिंसा महाव्रत ही नहीं, अहिंसा अणुव्रत भी इसे सुलझा सकता है। काश! मनुष्य अहिंसा अणुव्रत को समझे और इसे जीवन व्यवहार के साथ जोड़े।

समस्या अविश्वास की

दूसरी समस्या है अविश्वास की। आपसी विश्वास धुंधलाते जा रहे हैं। भाई भाई का विश्वास नहीं करता। पुत्र पिता का विश्वास नहीं करता। पति पत्नी का विश्वास नहीं करता। दायां हाथ बाएं

हाथ का विश्वास नहीं करता। बहुत बार ऐसा ही हो जाता है कि व्यक्ति स्वयं का विश्वास नहीं करता। विश्वास के अभाव में जीवन दूभर हो जाता है। सत्य महाव्रत विश्वास की बुनियाद है। सब लोग महाव्रती नहीं बन सकते। सत्य-अणुव्रत का कवच पहन लिया जाए तो अविश्वास के तीरों से सुरक्षा हो सकती है।

समस्या धोखाधड़ी की

तीसरी समस्या है—धोखाधड़ी की। मनुष्य को चिंता सताती रहती है कि वह ठगा जाएगा। संबंधों में धोखे का भय, व्यापार में धोखे का भय, बाजार में धोखे का भय, शादी-विवाह के प्रसंग में धोखे का भय। दवाई में मिलावट का भय, खाद्य-पदार्थों में मिलावट का भय, और तो और धर्मगुरुओं से भी धोखे का भय। चारों ओर धोखा। इसका समाधान है अचौर्यव्रत। प्रामाणिकता, ईमानदारी या कथनी-करनी की एकता का प्रतीक अचौर्य व्रत स्वीकृत हो जाए तो धोखाधड़ी का भय निर्मूल हो सकता है।

समस्या आबादी की

चौथी समस्या है—आबादी की। परिवार-नियोजन का व्यापक प्रचार और गर्भ निरोधक के कृत्रिम उपायों का प्रयोग, पर जनसंख्या नियंत्रित नहीं हो पाई है। एक ओर मुक्त सेक्स, दूसरी ओर भ्रूणहत्या, गर्भपात और जन्म के साथ ही अवांछित संतान की हत्या, किंतु आबादी द्रौपदी का चीर बनती जा रही है। जनसंख्या को नियंत्रित करने का अमोघ उपाय है ब्रह्मचर्य की साधना। ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन सबके लिए शक्य नहीं हो सकता, पर अणुव्रत का लक्ष्य न हो तो समस्या का समाधान कैसे होगा? अब्रह्मचर्य से निरंतर शक्ति का क्षय होता है। शक्तिहीन लोगों की संतान स्वस्थ और दीर्घायु कैसे हो सकती है? ब्रह्मचर्य की अधिक से अधिक साधना कर दुर्बलता से बचा जा सकता है।

समस्या अर्थ के चक्रव्यूह की

पांचवीं समस्या है लालसा की, अर्थ जीवनयापन का साधन है, किंतु इसे ही साध्य मानने वाले व्यक्ति सोते-जागते धन के सपने देखते हैं। वे अपनी आकांक्षाओं को असीमित विस्तार देते हैं। फिर इनकी पूर्ति के लिए उचित-अनुचित सब तरीके काम में लेते हैं। एक इच्छा की पूर्ति अनेक नई इच्छाओं को जन्म दे जाती है। लाभ से लोभ बढ़ता है—आगम का यह सच प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। आर्थिक भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति कब क्या कर लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। यौगलिक युग की जीवन-शैली कितनी सीधी और सरल थी। न खाने-पीने की चिंता, न मकान की चिंता। न बाल-बच्चों की चिंता, न शादी-विवाह की चिंता, न लोभ लालसा और न संग्रह की मनोवृत्ति। निश्चिंत जीवन और लंबा आयुष्य। इसका एकमात्र कारण अपरिग्रह का सिद्धांत है। जो लोग पूर्ण रूप से अपरिग्रही न बन सकें, वे परिग्रह की सीमा करके चिंताओं के चक्रव्यूह से बाहर निकल सकते हैं।

मूढ़ता बढ़ाती है दु:खों की परंपरा

मनुष्य के पास दो दृष्टियां होती हैं—संक्षेप दृष्टि और विस्तार दृष्टि। संक्षेप दृष्टि से देखा जाए तो संसार में ये पांच ही बुराइयां हैं जो दु:खों का सर्जन करती हैं। विस्तार में जाएं तो इनके अनेक रूप हो सकते हैं। कुछ अंतर समय का रहता है। संचार साधनों के विकास से आज विश्व इतना छोटा हो गया है कि इसके किसी एक कोने में घटित घटना की जानकारी सबको मिल जाती है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि किसी भी राष्ट्र के लोग हों, इनकी मौलिक मनोवृत्तियों में अधिक अंतर नहीं होता। मनुष्य जानता है कि हिंसा, असत्य, अचौर्य आदि के कारण संसार दु:खी है। इस जानकारी के बाद भी वह इनसे विरक्त नहीं होता। लगता है वह इनको दु:ख का निमित्त नहीं मान रहा है। कभी वह प्रशासन को दोषी ठहराता है, कभी बाजार की नीतियों पर दोषारोपण करता है और कभी अपने आस-पास के परिवेश को बुरा बताता है। मूल को भूल कर निमित्तों को पकड़ने की इस मनोवृत्ति ने मनुष्य को मूढ़ बनाया है। जब तक मूढ़ता नहीं छूटेगी, दु:खों का अंत नहीं हो पायेगा। ❑

संस्कार-निर्माण की यात्रा

आचार्य श्री तुलसी

एक महान आचार्य ने कहा है–

संतः सदाभिगन्तव्या, यद्यप्युपदिशन्ति नो।
यास्तु स्वैरकथास्तेषां, उपदेशा भवन्ति नः।।

संतों का सान्निध्य सदैव पाना चाहिए। उनकी उपासना करनी चाहिए। उनका निकटता से दर्शन करना चाहिए। कभी यह संभव है कि संत-जन अपने मुंह से कुछ भी उपदेश न दें। कुछ भी मार्गदर्शन न करें, तथापि उनकी उपासना, उनकी सन्निधि व्यक्ति के लिए बहुत ही हितकर है, शुभंकर है।

सहज प्रश्न हो सकता है कि जब साधु लोग उपदेश ही न दें, पथदर्शन ही न करें, फिर उनकी उपासना, उनके दर्शन की क्या उपादेयता है? क्या उपयोगिता है? आप क्यों मानते हैं कि उपदेश या मार्गदर्शन केवल बोल कर ही दिया जाता है। क्या अपने सद्व्यवहार एवं उच्च आचरण से दूसरों को मार्गदर्शन या उपदेश नहीं दिया जा सकता?

आप ध्यान दें, एक व्यक्ति संतों के सान्निध्य में जाता है। वहां वह देखता है कि साधु लोग परस्पर अत्यंत प्रेम से आलाप-संलाप करते हैं। वे एक-दूसरे की भूल इतने प्रेम से बताते हैं कि गलती करने वाले व्यक्ति को तनिक भी अखरता नहीं, बल्कि उसे अपनी भूल का एहसास होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप वह भविष्य में उस भूल को न दोहराने के लिए कृतसंकल्प होता है। छोटे साधु बड़े साधुओं का कितना विनय करते हैं। बड़े साधु अपने से छोटों के प्रति कितनी आत्मीयता एवं वात्सल्य का व्यवहार करते हैं। साधु-जन एक-एक शब्द विचार कर बोलते हैं। कदम-कदम देखकर चलते हैं। यदि प्रमादवश मार्ग में किसी व्यक्ति को पैर से ठोकर लग जाती है तो वे बिना क्षमा मांगे आगे नहीं बढ़ते।

इस प्रकार की दस-बीस नहीं, अपितु सैकड़ों बातें उसे देखने को मिलती हैं। उनका जीवन-निर्माण की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्त्व है। वस्तुतः जीवन-निर्माण सत्संस्कारों के द्वारा ही होता है और ये संस्कार व्यक्ति को संतों की संगत से सहजरूप से प्राप्त होते हैं। क्या यह मार्गदर्शन नहीं है? क्या यह उपदेश नहीं है? हम गहराई से देखें तो वास्तविक उपदेश और मार्गदर्शन जीवन-व्यवहार एवं आचरण से ही दिया जाता है। शाब्दिक

उपदेश या पथदर्शन तो इनके सामने बहुत छोटी बात है। और फिर बहुत सही तो यह है कि शाब्दिक उपदेश तभी असरकारी होता है जब वह उपदेशक के जीवन, व्यवहार एवं आचरण से स्नात होकर बाहर आए, अन्यथा वह मात्र वाग्विलोड़न ही रहता है।

कुछ लोग संत-दर्शन के उपदेश का उपहास करते हैं। वे इस उपदेश के पीछे संतों के अहं का दर्शन करते हैं, पर वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। पहली बात तो यह है कि कोई भी साधु-संत व्यक्तिगत अपने दर्शन करने की प्रेरणा नहीं देते। उनका उपदेश तो मात्र संत-दर्शन के संस्कार को सुरक्षित रखने की दृष्टि से होता है। इसके साथ ही दूसरी बात यह भी है कि संतों का दर्शन करने से संतों को कोई लाभ नहीं होता। कोई उनका दर्शन करता है, इससे वे महान नहीं बन जाते। कोई उनके दर्शन नहीं करता, इससे उनकी गरिमा में कहीं कोई न्यूनता नहीं आती। किसी के दर्शन करने या न करने–इन दोनों ही स्थितियों में वे तो जैसे हैं वैसे ही रहते हैं। हां, संत-दर्शन के संस्कार से संस्कारित व्यक्ति अवश्य प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से एक बहुत बड़े लाभ को प्राप्त होता है। इसी के समानांतर संतदर्शन के अभाव में व्यक्ति सहजतया प्राप्त होनेवाले एक महान लाभ से वंचित हो जाता है। पता नहीं, संत-दर्शन या उपासना का कौन-सा क्षण व्यक्ति के जीवन को रूपांतरित कर दे। सौभाग्य से जीवन में कभी-कभी ही ऐसे क्षण उपस्थित होते हैं, जिन क्षणों में व्यक्ति के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन घटित होता है।

मुझे अपने बाल्य-काल की स्मृति हो रही है। उस समय मेरी उम्र लगभग सात-आठ वर्ष की थी। पूज्य गुरुदेव कालूगणी उन दिनों जब कभी लाडनूं पधारते, वहां के पूरे वातावरण में अध्यात्म की एक नई लहर-सी आ जाती। दिन भर दर्शनार्थियों का तांता-सा लग जाता। मैं भी अपने साथियों के साथ पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ उनके प्रवास-स्थल पर जाता। एक अद्भुत चुंबकीय आकर्षण था उनके आभामंडल में। यद्यपि निकट जाकर उनके चरण-स्पर्श करने की हिम्मत तो मेरी बहुत कम पड़ती थी, पर दूर खड़ा-खड़ा घंटों पूज्य गुरुदेव के तेजस्वी मुखमंडल को निहारता रहता। इसके साथ ही मैं उनके सन्निकट रहने वाले छोटे-छोटे बाल-साधुओं की चर्या को सूक्ष्मता से देखता रहता। मैं देखता, कोई साधु गुरुदेव का पावन चरण-स्पर्श कर रहा है तो कोई उनको पंचांग वंदन कर रहा है। कोई साधु उन्हें करबद्ध कुछ निवेदन कर रहा है तो कोई उनसे किसी विषय में मार्गदर्शन प्राप्त कर रहा है। इन सब दृश्यों को देखकर मेरे मन में भावना जाग्रत होती कि कितना अच्छा हो, मैं भी एक छोटा-सा साधु बन जाऊं और पूज्य गुरुदेव की पुण्य सन्निधि प्राप्त करूं। कोई माने या न माने, पर यह एक वास्तविकता है कि मेरा दीक्षा स्वीकार करने का सबसे बड़ा कारण पूज्य गुरुदेव एवं साधुचर्या के प्रति आकर्षण ही बना।

संत-दर्शन का एक बड़ा लाभ यह भी है कि व्यक्ति को धार्मिक उपासनाओं की सही-सही जानकारी और प्रेरणा प्राप्त होती है। निस्संदेह धार्मिक उपासना जीवन में आध्यात्मिक जागरण के लिए अत्यंत उपयोगी है। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह दिन में अधिक नहीं तो कम-से-कम एक घंटे का समय धार्मिक उपासना के लिए अवश्य सुरक्षित रखे। सामायिक, संवर आदि की साधना से अपनी आत्मा को भावित करे। यथाशक्ति, यथावसर पौषध करे, उपवास करे। उपवास का अर्थ भूखे मरना नहीं, अपितु आत्मा के सन्निकट रहना है। सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन-मनन आदि उसी के विभिन्न अंग हैं। मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसी वैज्ञानिक उपासनाओं से लोग दूर क्यों रहते हैं? क्यों वे सहजतया प्राप्त होने वाले लाभ से वंचित होते हैं? हमारा तो इस अर्थ में कितना बड़ा सौभाग्य है कि हमें जाग्रत धर्म मिला है, जिसमें रूढ़ियों को कोई स्थान नहीं है। ऐसी सुंदर व वैज्ञानिक धार्मिक उपासना-पद्धतियों की उपेक्षा का कोई औचित्य नहीं है। युवा-पीढ़ी में यह उपेक्षा अपेक्षाकृत गहरी है। मैं नहीं समझ पाता कि

धार्मिक क्रिया या उपासना करने में युवकों को शर्म या संकोच क्यों महसूस होता है। जब उच्च शिक्षा प्राप्त अधिकारी विद्वान लोग भी बड़ी श्रद्धा के साथ नियमित रूप से अपनी धार्मिक उपासना करते हैं, तब समाज के थोड़े पढ़े-लिखे युवक धार्मिक क्रियाओं के प्रति उदासीनता क्यों रखते हैं?

मैं नमाज पढ़कर आता हूं

मौलाना अब्दुल कलाम आजाद नेहरू मंत्रिमंडल के एक प्रमुख सदस्य थे। वे केंद्रीय शिक्षामंत्री ही नहीं, अपितु राष्ट्र के माने हुए शिक्षाशास्त्री भी थे। एक बार मंत्रिमंडल की आवश्यक बैठक चल रही थी। मौलाना साहब के नमाज पढ़ने का समय हो गया। वे बैठक के बीच से उठे और बोले–'आप बैठक चालू रखें, मैं नमाज पढ़कर आता हूं।' ऐसा कहकर वे तत्काल वहां से चले गए।

इस उदाहरण से युवक लोग समझें कि विद्वत्ता या पढ़ाई-लिखाई के साथ धार्मिक उपासना का कोई विरोध नहीं है। धार्मिक उपासना सबके लिए समान रूप से करणीय है और हर अवस्था में करणीय है। किसी बहाने इसकी उपेक्षा या अवमूल्यन करने का अर्थ है–अपने जीवन की उपेक्षा और अवमूल्यन करना।

कहा जा सकता है कि युवा अवस्था तो आमोद-प्रमोद, हंसी-खुशी और जीवन का आनंद लूटने के लिए है। धार्मिक उपासना तो बाद में भी की जा सकती है। यदि इस उम्र में ही व्यक्ति धार्मिक उपासना करने लग जाएगा तो उसकी सारी महत्त्वाकांक्षाएं समाप्त हो जाएंगी। सोचने का व्यक्ति-व्यक्ति का अपना अलग-अलग प्रकार होता है, इसलिए किसी के भी चिंतन पर कोई प्रतिबंध नहीं हो सकता। लेकिन काल पर किसका प्रतिबंध है? क्या यह जरूरी है कि काल बुढ़ापा आने तक व्यक्ति की प्रतीक्षा करता रहेगा?

डॉक्टर ने क्लिनिक के बाहर तख्ती लगा दी, 'दस बजे बाद क्लिनिक बंद हो जाता है।' मरीज उस सूचना को ध्यान में रखकर दस बजे से पहले क्लिनिक पहुंचकर डॉक्टर से मिलते। एक दिन दस बजे के बाद एक मरीज क्लिनिक पहुंचा और उसने डॉक्टर को पुकारा। डॉक्टर अपने चेंबर से बाहर आया और बोला, 'क्या बात है?'

मरीज–'साहब! मुझे कुत्ते ने काट लिया है।'

डॉक्टर–'(जरा झल्लाकर) क्या तुम नहीं जानते कि क्लिनिक का समय दस बजे तक का ही है। दस बजे के बाद मैं मरीजों को नहीं देखता?'

मरीज–'साहब! मैं तो जानता हूं इस बात को, पर कुत्ता नहीं जानता इस प्रतिबंध को। मुझ पर तो यह प्रतिबंध लागू हो सकता है, पर काटने वाले कुत्ते पर यह प्रतिबंध लागू नहीं होता।'

युवक इस बात को समझें कि कुत्ते पर प्रतिबंध नहीं हो सकता। काल पर प्रतिबंध नहीं हो सकता और जब काल पर प्रतिबंध नहीं हो सकता है, तब बुढ़ापे की प्रतीक्षा तक धार्मिक उपासना की उपेक्षा करना कहां तक उचित है?

इस संदर्भ में एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। काल की बात मैंने कही, पर काल की विभीषिका खड़ी कर मैं युवापीढ़ी को धार्मिक नहीं बनाना चाहता। मैं तो मात्र वस्तुस्थिति से आपको परिचित कराना चाहता हूं। वस्तुतः भय और प्रलोभन जैसे तत्त्वों से प्रेरित होकर किया गया आचरण धर्म है ही नहीं। धर्म तो अंतर की प्रेरणा है और अंतर्मन की प्रेरणा से ही धर्म होना चाहिए। ऐसा धर्म ही व्यक्ति की सुख-शांति का आधार तथा पवित्रता का साधन होता है। साधु-संत ऐसे धर्म की उपासना के लिए ही अपने जीवन को समर्पित करते हैं।

कुछ लोगों की धारणा है कि धर्म की जीवन में कोई अपेक्षा नहीं है। इसी परिप्रेक्ष्य में वे साधु-संतों की उपयोगिता पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं। विचार स्वातंत्र्य का युग है, इसलिए हर व्यक्ति अपना स्वतंत्र

विचार रख सकता है, पर मैं एक बात कहना चाहता हूं, धार्मिक शिक्षा का महत्त्व चाहे कोई स्वीकार करे या न करे, पर व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर तक स्वस्थ जीवन के लिए नैतिकता के माहात्म्य को तो स्वीकार करना ही होगा। जब नैतिक मूल्यों के माहात्म्य को जीवन जीने की हर भूमिका में स्वीकार किया जाता है तब धार्मिक मूल्यों की स्वीकृति तो सहज-रूप से ही हो जाती है। हम न भूलें, नैतिकता का मूलभूत आधार धर्म ही है। सत्य, अहिंसा, सह-अस्तित्व, अपरिग्रह आदि धर्म के मौलिक तत्त्वों को भुलाकर नैतिकता-संपन्न समाज या राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिए स्वस्थ-समाज संरचना के लिए धर्म को अनिवार्य अपेक्षा के रूप में स्वीकार करना ही होगा और जब धर्म को एक स्वस्थ समाज संरचना में अनिवार्य अपेक्षा के रूप में स्वीकृति मिलती है तब साधु समाज की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। फिर इसको नकारने का कोई ठोस आधार नहीं रहता, क्योंकि साधु-संत ही धर्म का मूर्तरूप होते हैं। अमूर्त धर्म का उनके जीवन में साक्षात दर्शन किया जा सकता है। उनके जीवन की हर प्रवृत्ति व्यक्ति को धर्म के सुसंस्कार प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में साधु-संतों को हम धर्म का संदेशवाहक भी कह सकते हैं। इनके द्वारा ही समाज की धार्मिकता का सक्रिय शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त होता है। ध्यान रहे, धार्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण की इस भित्ति पर ही नैतिक-जीवन का भव्य प्रासाद खड़ा होता है। इस आधार को सुदृढ़ बनाकर ही व्यक्ति से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के जीवन को नैतिकता के सांचे में ढाला जा सकता है।

धार्मिक संस्कारों के अभाव में आज नई पीढ़ी की नैतिक आस्थाएं हिल चुकी हैं। आधुनिकता के प्रवाह एवं विकासशीलता के नाम पर उसका खान-पान, रहन-सहन जिस त्वरता के साथ विकृत होता जा रहा है, यह उसकी ही एक परिणति है। समाज का नेतृ-वर्ग एवं अभिभावक-वर्ग इस स्थिति से चिंतित एवं व्यथित है। अपनी इस चिंता एवं व्यथा को वह सार्वजनिक रूप से यदा-कदा अभिव्यक्ति भी देता है। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए मैं उनकी इस चिंता एवं व्यथा को अस्वाभाविक नहीं मानता, क्योंकि इस स्थिति के बहुत दूरगामी परिणाम हैं। यद्यपि नई पीढ़ी में कुछ प्रतिशत लोग आज भी सुसंस्कारित हैं, परंतु जहां अधिक प्रतिशत लोगों का प्रश्न है उनमें संस्कारों का यह खोखलापन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

इसके बावजूद मैं चिंता करने व व्यथित होने को अनपेक्षित मानता हूं। समाज के नेतृ-वर्ग एवं अभिभावक-वर्ग से कहना चाहता हूं कि वे चिंता एवं व्यथा के स्थान पर समुचित चिंतन एवं व्यवस्था करें। वस्तुतः चिंता करना या व्यथित होना किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। गहराई से देखा जाए तो इससे समस्या समाहित होने की अपेक्षा और अधिक गहराती है। हम ध्यान दें, जीवन एवं समस्या का शाश्वत संबंध है। जहां जीवन है, वहां समस्या भी साथ-साथ चलती है। इस तथ्य को स्वीकार कर हम समस्याओं से घबराएं नहीं, अपितु चिंतन-मनन के द्वारा उनका समुचित समाधान खोजें। आप निश्चित मानें, हमारी समस्याओं को सुलझाने के लिए कोई भगवान नहीं आएगा। हमारी समस्याओं को समाहित करने के लिए हमें स्वयं भगवान बनना होगा। हमें स्वयं ही उनका समाधान खोजना होगा।

मेरा अनुभव है कि मानसिक संतुलन एवं धैर्यपूर्वक चिंतन-मनन के द्वारा विषम-से-विषम समस्या का भी सुंदर-से-सुंदर समाधान निकल सकता है। समाधान मिलने के पश्चात हम उसकी क्रियान्विति की समुचित व्यवस्था करें। इसके अतिरिक्त किसी भी समस्या के समाधान की कोई वैकल्पिक प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती। वर्तमान में नई पीढ़ी के संस्कारों की समस्या को भी हमें इसी परिप्रेक्ष्य में समाहित करना है। साधु-संतों का सान्निध्य साधने एवं धार्मिक उपासना करने की बात मैंने कही। समस्या के समाधान की दिशा में ये दोनों बातें महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं। नैतिक शिक्षा, संस्कार केंद्र, सत्साहित्य का अध्ययन आदि इस यात्रा के अन्य महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक पड़ाव हैं। ❐

मुखौटे को बेनकाब करें

प्रोफेसर डॉ. महेन्द्र जैन

पिछले दिनों महानगर दिल्ली के एक धार्मिक उत्सव में जाने का अवसर मिला। समारोह की व्यवस्थाओं को देख लगा स्वर्ग यहीं है। चारों तरफ रंगीन रोशनी बिखेरते बल्ब, बड़े-बड़े होर्डिंग्स, बंदनवारों की लंबी कतारें, भव्य शामियाना, कर्णप्रिय संगीत, कलात्मक भव्य मंच और हजारों-हजारों भक्तों का मेला। इस भव्य आयोजन को देख लगा पारिवारिक उत्सवों में जिस तरह का प्रदर्शन-आडंबर होता है वही काला ग्रहण अब धार्मिक आयोजनों को भी लग गया है।

आज चारों तरफ प्रदर्शन का बोलबाला है। पारिवारिक उत्सव हों या सामाजिक-धार्मिक समारोह हो या राजनैतिक, सभी तरफ आडंबर का परचम फहरा रहा है। निमंत्रण-पत्र, सजावट, स्वागतद्वार, विज्ञापन इत्यादि पर होने वाला व्यय यही दर्शा रहा है कि समारोह आडंबर के पर्याय बनते जा रहे हैं। इस भव्य प्रदर्शन एवं आडंबर को देख आम आदमी के मन में एक ही सवाल उठ रहा है कि जब धार्मिक-राजनैतिक आयोजनों में प्रदर्शन-आडंबर का वर्चस्व है तो फिर हम हमारे पारिवारिक उत्सवों पर क्यों नहीं करें वैभव का प्रदर्शन। इस सोच का परिणाम यह हो रहा है कि वैवाहिक एवं पारिवारिक आयोजनों में वैभव का नंगा प्रदर्शन हो रहा है और दिनोदिन बेशर्मी बढ़ती जा रही है।

पंचसितारा महलों में जो वैवाहिक समारोह हो रहे हैं उन्होंने तो प्रदर्शन-आडंबर की लक्ष्मण रेखा को भी पीछे छोड़ दिया है। दूधिया झिलमिलाती रोशनी में नहाता प्रांगण, खुशबुओं की महक, सैकड़ों व्यंजन, भव्य सजावट, फैशनेबुल कपड़ों में लिपटे शरीर, प्रवेशद्वार से मंच तक बनाई गई कृत्रिम नहर और नाव पर सवार दूल्हा-दुलहन। पांवों में लगी मेहंदी को धूल नहीं लग जाए, सारे प्रबंध और इन प्रबंधों पर हो रहा है अनाप-शनाप व्यय।

बेहतरीन व्यवस्थाओं के नाम पर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आयोजनों पर जिस तरह से अर्थ को बहाया जा सकता है उससे समाज में वर्गसंघर्ष की स्थितियां बनती जा रही हैं और आदमी टूटता-सा नजर आ रहा है।

आडंबर के दंश से टूटते समाज एवं सामाजिक मर्यादाओं को बचाने का एक ही मार्ग है कि परंपराओं एवं व्यवस्थाओं का सरलीकरण हो तथा हमारी कथनी-करनी का अंतर मिटे। मंच पर आकर सभी समाज-सुधारक, नेतृवर्ग सामाजिक मर्यादाओं एवं सादगी की बात करते हैं लेकिन ज्यों ही अपने घर पर विवाह का अवसर आता है अहं हावी हो जाता है जिसके चलते संयम-सादगी गौण हो जाते हैं। जब इनसे पूछा जाता है कि आप तो संयम-सादगी का उपदेश देते आए हैं, प्रदर्शन क्यों कर रहे हैं तो उत्तर मिलता है—मैं तो नहीं चाहता, पर नई पीढ़ी नहीं मान रही है, इसलिए मजबूर हूं। हमें ऐसे समाज सुधारकों से सावधान रहना होगा जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। झूठ बोलना इन तथाकथित नेताओं के जीवन का सबसे बड़ा मुखौटा है। झूठ बोलने को ध्यान में रखते हुए हमें हमारे नेताओं के मुखौटों को बेनकाब करने की हिम्मत जुटानी होगी और उनके खिलाफ सामाजिक असहयोग का ब्रह्मास्त्र चलाना होगा। हमारा यह असहयोग तथाकथित बड़े आदमियों को बेपर्दा करेगा जो अपने अर्थबल के सहारे समाज को बौना समझते हैं। समाज एवं सामाजिक मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखने के लिए हमें उन सभी सामाजिक-धार्मिक पारिवारिक-राजनैतिक समारोहों का बहिष्कार करना होगा जहां अर्थशक्ति का भरपूर प्रदर्शन-आडंबर होता है। धार्मिक-पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन क्रम में मर्यादाओं की प्रमुखता ही स्वस्थ समाज संरचना की आधारशिला है। ❑

उत्तर क्या और कैसे?

वियोगी हरि

आप कैसे हैं, कैसी तबीयत है? सेहत कैसी है? स्वास्थ्य अच्छा है न? मिजाज-पुरसी के ऐंसे प्रश्न सहज ही नमस्कार, नमस्ते, राम-राम, सलाम आदि का अनुसरण ठीक उसी तरह करते हैं, जैसे 'धम्मपद' की एक गाथा के अनुसार रथ को खींचने वाले बैल के पैरों का अनुसरण रथ के पहिए।

पूछने वाले को आयास नहीं करना पड़ता। उत्तर भी वैसा ही सहज दे दिया जाता है। 'ठीक हूं', 'अच्छा हूं', 'मेहरबानी है आपकी।' कुछ सोचना नहीं पड़ता। ऐसे प्रश्नों और ऐसे उत्तरों को व्यर्थ या बेकार कहना तो उचित नहीं, पर यह कहा जा सकता है कि उनका अर्थ निकालना जरूरी नहीं होता।

लेकिन कोई सचमुच अस्वस्थ हो, तबीयत अच्छी न हो, तब भी क्या यही उत्तर होगा कि 'ठीक हूं?' ऐसा इसलिए कि या तो तबीयत का हाल पूछने वाले मित्र को उत्तर देने वाला चिंतित और व्यथित नहीं करना चाहता, या फिर अपनी तबीयत का ब्योरा देकर वह स्वयं परेशानी और अशांति से बचना चाहता है। डॉक्टर के अलावा किस-किसको वह अपनी तबीयत का हाल बताए?

यह हुई अस्वस्थ या किसी चिंताग्रस्त व्यक्ति की बात। पर प्रश्न तो शरीर तथा मन दोनों से स्वस्थ व्यक्ति से पूछा जाता है। विशिष्टता का तब तकाजा है कि उसका उत्तर मुस्कराते हुए दिया जाए कि 'जी, बिलकुल अच्छा हूं आपकी मेहरबानी से।'

उत्तर से उत्साहित होकर फिर पूछा जाता है– 'कहिए, और क्या खबर है?' प्रश्न बड़ा व्यापक है। खबर से क्या आशय है, कहां की और किस विषय की खबर? पूछने वाले के मन में भी यह प्रश्न प्रायः स्पष्ट नहीं होता है। ज्यादातर मिजाज-पुरसी की तरह का ही यह प्रश्न है। सहज ही उत्तर दे दिया जाता है, 'कोई खास बात नहीं है।' मगर आम बातों की भी तसवीर सामने नहीं होती, खास की तो बात ही क्या।

पूछने वाले के मन में उत्कंठा होती है कि उसे कोई-न-कोई खास खबर सुनने को मिले। मिलने वालों से जो खबर उसने कहीं सुन रखी है और जिससे कुतूहल या बेचैनी पैदा हो गई है, वह खबर कहां तक सही या गलत है, यह जानने को वह उत्सुक है। खबरें तो नित्य ही वातावरण में पैदा होती हैं और घूमती रहती हैं। अफवाह का जामा भी वे पहन लेती हैं। पूछने वाला आदी हो जाता है हर रोज खबरों का पता लगाने का। वह जिस किसी से भी मिलता है, यह पूछना गोया उसका तकिया कलाम हो गया है कि 'कहिए, क्या खबर है?' खबरें जानने की उसकी तेज प्यास को अखबार भी शांत नहीं कर पाते, जो सच्ची-झूठी खबरें हर सुबह हर जगह फैलाते रहते हैं।

यह भी पूछा जाता है–'आज-कल क्या चल रहा है?' क्या उत्तर दिया जाए! सारी चीजें जब चल रही हैं, तो किसी खास चीज के चलने की बात पूछी गयी है? सब गतिमान हैं–अणु-परमाणु से लेकर ब्रह्मांड तक, किंतु पूछने वाले का प्रयोजन दार्शनिक और वैज्ञानिक उत्तर नहीं चाहता है। उसका आशय तो यह है कि 'तुम्हारे जीवन में आज-कल क्या घटित हो रहा है? कौन-सा काम कर रहे हो? क्या प्रवृत्ति चल रही है? कोई नया काम हाथ में लिया है क्या?' पूछने वाले का असल में आशय क्या है, यह समझकर उत्तर दे दिया जाता है बिलकुल व्यावहारिक। यह बात अलग है कि उस उत्तर से उसे संतोष होता है या नहीं।

मैं अब अपनी ही बात कहता हूं। तबीयत या सेहत की बात को और स्वास्थ्य की बात को छोड़ देता हूं। सेहत और स्वास्थ्य में फर्क करता हूं, यद्यपि दोनों का एक ही अर्थ ले लिया गया है। 'स्व' में अर्थात् अपने आपमें क्योंकि स्थित नहीं हो पाया हूं, तब कैसे कहूं कि 'स्वस्थ हूं?' 'तबीयत या सेहत ठीक ही है' पूछने पर बता देता हूं। यों कई बार उतार-चढ़ाव आए हैं और आते रहेंगे। न आने की गारंटी कौन दे? संयम-पालन से उतार बहुत कम आता है, किंतु प्रकृति का साथ न देने के कारण अपने आप पर मैं वांछनीय काबू पा नहीं सका।

'क्या चल रहा है?' इस प्रश्न का आशय मेरे अपने संबंध में यह रहा है कि 'आज-कल आप क्या लिख रहे हैं? और समाज-सेवा की कौन-सी प्रवृत्ति चल रही है।'

उन मित्रों की कोई गलती नहीं, जो पूछते हैं कि 'आज-कल आप क्या लिख रहे हैं? कुछ-न-कुछ तो लिखा ही है, पुस्तकें लिखी हैं और लेख भी लिखे हैं, आज भी लिखता हूं, पर यह बात नहीं कि लिखना 'स्वभाव-गत' बन गया है और आदत में शुमार हो गया है। लिखना कभी भी जीवन के साथ एकरस नहीं हुआ। कारण कि प्रयोजन ऊपरी और उथला रहा, आंतरिक और गहरा नहीं। कभी कोई विचार या भाव मन में उठा, उसे कागज पर उतार दिया और छपाने को दौड़ पड़ा। पेड़ की डालों में कोंपले फूटीं, फूल खिल उठे और फल भी उन पर लद गए। पर देखा गया क्या? फूल निर्गंध और फल नीरस। दिन बीतने पर न दीखे फूल, न दीखे फल और न दीखे हरे-हरे पत्ते। ठूंठ-सा खड़ा है वह पेड़। ऐसा ही है मेरा लिखा साहित्य। जो कुछ भी लिखा या रचा, उस पर, और उससे प्राप्त ख्याति पर नजर डालता हूं तो अचरज होता है, हंसी भी आती है। साथ ही, हीनता की भावना का अनुभव करता हूं, जब देखता और सुनता हूं कि साहित्य-सेवियों की पंक्ति में मेरा नाम रख दिया गया है। फिर भी लिखना छूटा नहीं, लिख ही रहा हूं। गनीमत है, जो लिखना व्यसन नहीं बना, मादक व्यसन तो हरगिज नहीं। 'स्वान्तःसुखाय' तो दूर, दूसरों का मनोरंजन करने का भी साधन नहीं बना। मिलने-जुलने वालों की कृपा होगी, यदि यह न पूछा जाए, 'कहिए, आज कल आप क्या लिख रहे हैं?'

और इस प्रश्न का भी जवाब दे दूं कि 'समाज-सेवा की कौन-सी प्रवृत्ति आपकी चल रही है?' कोई भी प्रवृत्ति नहीं। निश्चय ही ऐसा पूछना भ्रांतिमूलक है। विभिन्न प्रदेशों में घूमने-फिरने और जहां-तहां भाषण देने और लेख लिखने को समाज-सेवा का रूप दे दिया गया—बड़ा सस्ता रूप, बड़ा सस्ता नाम। इसका कारण है—लोक-सेवा का मर्म हृदयंगम न करना। स्वागत-सत्कार और जयकार के कोलाहल में यह संभव भी नहीं। दूसरे कुछ भी कहें, कुछ भी अर्थ लगाएं, पर स्वयं को तो समझ लेना चाहिए कि जन-सेवक का जीवन अहंकार-शून्य होता है, उसके समर्पित जीवन में स्वार्थ की गंध भी नहीं होती है। अंत में ऐसे सेवक की प्रवृत्ति सच्ची निवृत्ति में परिणत हो जाती है।

तब क्या यह मेरी गुस्ताखी होगी, यदि पूछने वाले को यह उत्तर दूं कि 'प्रवृत्ति तो कोई-न-कोई चलती ही रहती है। चलता-फिरता हूं, उठता-बैठता हूं और सुनता हूं और लिखता-पढ़ता हूं। खाता-पीता और सोता तो हूं ही। राग-द्वेष भी जीवन में चलता रहता है। ये ही प्रवृत्तियां हैं।'

एक यह प्रश्न भी कभी-कभी पूछा गया है—'आप उपासना किस देवता की करते हैं?' उत्तर होता है—'क्या बताऊं, किसी की नहीं।' बालपन में और कुछ-कुछ युवावस्था में भी देव-पूजा और पाठ-पारायण किया था, पर बाद में वह छूटा सो छूटा। आत्म-ज्ञान की अनुभूति नहीं हुई। श्रद्धा और अश्रद्धा की दोहरी रस्सी पर लटकता रहा हूं। दूसरों पर, उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर ईर्ष्या होती है। उनकी उपासना-पूजा में भी उनका साथ दिया और देता हूं, किंतु अंतर में आवश्यक आस्था का अभाव पाता हूं। प्रकट कर देने में यह डर रहा कि कहीं लोग-बाग मुझे अश्रद्धालु और अधार्मिक न कहने लग जाएं। अतः आत्म-वंचना से काम ले रहा हूं और इसी में बचाव देखता हूं। ❐

साभार : पुस्तक : **कैसे-कैसे भ्रम से**

विश्व समस्या : निदान के आयाम

प्रोफेसर आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

आज कोई समाज, कोई प्रांत और कोई राष्ट्र ऐसा नहीं है जो समस्याओं से आक्रांत न हो अर्थात समस्त विश्व समस्याओं के चक्रव्यूह में फंसा हुआ है। आज रूसो का यह कथन, 'मनुष्य स्वतंत्र तो पैदा होता है किंतु पैदा होते ही वह जंजीरों में जकड़ जाता है।' शत-प्रतिशत सही प्रतीत होता है। जंजीर से तात्पर्य केवल लोहे की सांकल से ही नहीं अपितु भयावह परिस्थिति जनित विषाक्त वातावरण से भी है। समस्याओं की बाढ़ ने मानव मस्तिष्क और उसके आसपास के वातावरण को प्रदूषित कर दिया है। विकृत मस्तिष्क से भला सुकृत चिंतन कैसे हो सकता है? दूषित वातावरण में सांस लेने वाला भला समाज, राष्ट्र और विश्व का हित कैसे सोच सकता है?

आतंकवाद की विभीषिका, सांप्रदायिक उन्माद की तीक्ष्णता, आणविक विस्फोट की आशंका, शस्त्रीकरण की प्रबलता, आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक उठापटक से सक्रांत विश्व किस ओर जाएगा? यह प्रश्न सबके अंतर्मन को कचोट रहा है। इस बात को लेकर भय की आशंका का होना भी स्वाभाविक है। दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जनसंख्या वृद्धि से एक दिन ऐसा आएगा जब लोगों को खड़े होने का स्थान मिलना भी मुश्किल हो जाएगा। भारत की स्थिति तो बदतर हो जाएगी किंतु सोचने से कहीं समाधान मिला है? बढ़ती जनसंख्या ने रहने के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई शुरू कर दी तो भरण-पोषण के लिए पृथ्वी का अंधाधुंध दोहन शुरू कर दिया। प्रकृति के प्रति यह खिलवाड़ संपूर्ण मानव जाति के लिए महंगा सिद्ध हो रहा है और भविष्य में और अधिक महंगा साबित होगा। वन कट रहे हैं, चरागाह उजड़ रहे हैं, माटी की उर्वरता नष्ट हो रही है, पृथ्वी बंजर बन रही है, इन सबसे खतरे की घंटी बज चुकी है, किंतु लापरवाह मानव अब भी बेखौफ है। समस्याओं का समाधान नहीं ढूंढ़ रहा है प्रत्युत समस्याओं में घुट-घुट कर जीने से उत्पन्न तनाव से मुक्त होने के लिए तरह-तरह का नशा पाल रहा है।

सच कहा गया है कि शृंगाल की जब मौत आती है तो वह शहर की तरफ भागता है, व्यक्ति का जब पतन होता है तो उसकी मति मारी जाती है। आज के मानव पर यह उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। यदि ऐसा न होता तो वह कभी भी तनाव मुक्ति के लिए नशे की ओर आकृष्ट न होता। अफीम, चरस, स्मैक, बीड़ी, सिगरेट सबके सब व्यक्ति को खोखला बना रहे हैं। अज्ञान से ग्रस्त मानव यह भूल गया है कि उसका हित किसमें है, उसे यह पता नहीं कि एक बीड़ी या सिगरेट पीने से पांच मिनट की उम्र कम होती है। आम तौर पर लोग बारह सिगरेट तो एक दिन में पी ही डालते हैं अर्थात् एक दिन में एक घंटा अपनी उम्र कम कर लेते हैं। बीड़ी, सिगरेट व्यक्ति के जीवन का ह्रास ही नहीं करते वनों को भी निगलते हैं, क्योंकि इनमें लगने वाले तंबाकू को सुखाने के लिए पेड़ को काटकर जलाया जाता है।

कहा जाता है कि विकासशील देशों में तीन सौ सिगरेट बनाने के लिए एक पेड़ कटता है। पेड़ों के नष्ट होने से मानसून बनने की संभावना क्षीण होती है। मानसून के अभाव में वर्षा नहीं होती और वर्षा के अभाव में अकाल पड़ता है। अकाल से कितनी हानि होती है इसका अंदाजा लगाना कठिन है।

इस तरह हम कह सकते हैं व्यक्ति स्वयं अपना दुश्मन है और यदि अपना दुश्मन हम स्वयं हैं तो भला दूसरा हमें कैसे बचा सकता है? हमारे अपने बचाव के लिए आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम गंभीरता से अपने आप पर चिंतन करें, अपनी अज्ञानता को पकड़ें और अपनी कमजोरी को जानें। जिसने अपनी अज्ञानता को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया।

क्या आप यह जानते हैं कि पाश्चात्य जगत का दार्शनिक सुकरात महापुरुष कैसे बना? यदि नहीं तो यह जान लें कि उसकी महानता का मूल कारण यह था कि वह अपनी अज्ञानता को जानता था। उसने स्वयं कहा था–'मैं अपनी अज्ञानता के सिवाय कुछ नहीं जानता हूं।' जो अपनी अज्ञानता को जानता है वह उस अज्ञानता का शिकार नहीं हो पाता और जो अज्ञानता का शिकार नहीं बनता, वह जीवन यात्रा में आगे बढ़ता चला जाता है।

सर्वप्रथम उपर्युक्त समस्याओं के निदान के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति पर अज्ञानता का जो आवरण खचित है उसका पर्दाफाश किया जाए, उसको अपनी कमजोरी का एहसास कराया जाए। समस्त समस्याओं का मूल व्यक्ति है, अतः उसका सुधार अत्यंत अपेक्षित है और उसके सुधार के लिए गोष्ठियों, सम्मेलन, दूरदर्शन-आकाशवाणी व सच्चे साहित्य द्वारा उसकी अज्ञानता का बोध कराया जाए।

व्यक्ति धर्म की आड़ लेकर खून-खराबा करता है। बेरोजगार होने पर आतंकवादी बन जाता है, आराम तलब होकर जनसंख्या वृद्धि करता है, अपने बड़े परिवार की अधिक मांग की पूर्ति में असफल होने पर तनाव का जीवन जीता है और तनाव को दूर करने के लिए नशे की गोद में चिपक जाता है। इन सब समस्याओं का केंद्र बिंदु व्यक्ति जब तक नहीं सुधरेगा तब तक समस्या का निदान असंभव होगा। तभी तो कहा गया है–**सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।** अतः अपेक्षा है कि व्यक्ति को बदलने की और इस बदलाव के लिए तरह-तरह की गोष्ठियां एवं सम्मेलनों द्वारा उसे अपनी कमी का एहसास कराया जाना चाहिए।

दूरदर्शन और आकाशवाणी पर ऐसे-ऐसे कार्यक्रम दिखाए और सुनाए जाएं, जिसे देख और सुनकर व्यक्ति के बदलाव की पृष्ठभूमि बन सके। कहा गया है कि यदि कमियों पर बार-बार संकेत किया जाए तो कभी न कभी उसे एहसास अवश्य होगा। और यदि एक बार उसे एहसास हो जाए तो समझिए समस्या का अंत निकट है। इस दिशा में एक भी कदम बढ़ता है तो ही भविष्य में अच्छी संभावना बनेगी। सच कहा गया है–

'वे अकेले ही चले थे मंजिल की ओर।
हमसफर आते गए कारवां बनता गया।'

इसलिए समूह के इंतजार में किसी उठे कदम को रोकना नहीं चाहिए। सब करें तो मैं भी करूंगा। यह सोच तो व्यक्ति को इक्कीसवीं सदी के स्थान पर उन्नीसवीं सदी की ओर ले जाएगा। समय किसी का इंतजार नहीं करता, जो समय का रुख पहचान कर कमर कसकर आगे बढ़ते हैं, मंजिल उन्हें ही हस्तगत होती है। समस्या के निवारण में सम्मेलन और गोष्ठियों का अधिक महत्त्व है।

अब विश्व में निःशस्त्रीकरण की समस्या को लेकर अनेक सम्मेलन हुए, विशेष रूप से अमेरिका और रूस में जिसका प्रतिफल सामने आया है। निःशस्त्रीकरण के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा है। इसी कारण आज विश्व में यह गूंज होने लगी है कि हमें अणुबम नहीं, अन्नबम चाहिए। विनाश नहीं, विकास चाहिए। दूरदर्शन व आकाशवाणी पर आतंकवाद, संप्रदायवाद, जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरण प्रदूषण एवं नशा पर जो छोटी-छोटी कहानियां, वृत्तचित्र, रूपक, आदि प्रस्तुत किए जा रहे हैं उसका अनुकूल परिणाम पड़ना शुरू हो गया है।

'एक या दो बच्चे घर में होते हैं अच्छे' चौराहों पर लगे साइनबोर्डों की इस वाक्यावली का प्रभाव भी जनचेतना में आज देखने को मिल रहा है। 'मुर्दा है वह देश जहां साहित्य नहीं' यह वाक्य साहित्य की आवश्यकता और उपयोगिता दोनों पर प्रकाश डालता है। जहां साहित्य की विपुल संपदा नहीं है, वहां का मानव, मानव के रूप में मुर्दा बनकर रह जाता है। इसलिए आवश्यकता है अच्छे, उपयोगी साहित्य के निर्माण की किंतु दुर्भाग्य से व्यावसायिक साहित्य रचना ने साहित्य की उत्कृष्टता को न केवल अवरुद्ध किया है अपितु व्यक्ति को इनसान बनने से रोका है।

गांधीजी के बारे में कहा जाता है कि उनके जीवन में परिवर्तन रस्किन की पुस्तक **अन टू दि लास्ट** पढ़ने से आया। गीता, उपनिषद पढ़कर कितने लोग महान बन गए। रामायण, महाभारत का पारायण कर कितनों ने अपना निर्माण किया। सत्साहित्य पठन को जीवन निर्माण की रामबाण ओषध कहा जाए तो कोई अतिरंजनापूर्ण कथन नहीं होगा।

आज विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि विश्व को समस्याओं से निजात दिलायी जा सकती है। समस्या हो और समाधान न हो, यह संभव नहीं है। विश्व की समस्याओं के निदान के लिए जागरूकता एवं शोध की आवश्यकता है। जागरूकता के लिए सम्मेलन और गोष्ठियां आवश्यक हैं तो बोध के लिए दूरदर्शन, रेडियो, साहित्य और साइनबोर्ड जरूरी है। इनके माध्यम से एक बार यदि व्यक्ति का इन समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया जाए और उसकी कमियों का एहसास कराया जाए तो व्यक्ति पूरे उत्साह से अपनी गलतियों को सुधारने की दिशा में गतिशील होगा और इस दिशा में उठा उसका प्रत्येक कदम नए और खुशहाल विश्व के निर्माण की ओर उन्मुख होगा। नई रश्मियों से भूमण्डल आलोकित होगा। अतः स्वागत है सुबह के भूले के शाम को वापस लौटने की। कहा गया है कि 'जब जागो तब सवेरा' किंतु यदि जाग्रति न आए तो समझो 'न तुम बचोगे, न साथी तुम्हारे' अतः जाग्रति के कदम बढ़ें, समस्याओं का अवसान हो, विश्व नवनिर्माण की दिशा में प्रयास करें। मानव की संकल्प चेतना को मंजिल मिले, यही शुभकामना है। ❒

तुलसी की बोध-कथाएं

एक

एक जन्मांध व्यक्ति किसी जंगल में भटक गया। लाठी के सहारे घूमता हुआ वह एक परकोटे में फंस गया, जिसकी परिधि चौरासी मील की थी। भूख और प्यास से व्याकुल हो वह कराहने लगा। एक ग्वाले ने उसकी कराह सुनी। वह उसके पास पहुंचकर बोला–'सूरदास! तुम यहां कैसे आ गए?' सूरदास घबराया हुआ-सा बोला–'भाई! आया तो किसी के साथ था। अब अकेला छूट गया हूं। तुम मुझे सही रास्ता पकड़ा दो।' ग्वाले ने विवशता प्रकट करते हुए कहा–'रास्ता बहुत लंबा है और मुझे अपने पशुओं को संभालना है। तुम इस जंगल में भटक गए तो महीनों तक घर नहीं पहुंच पाओगे। इस जंगल के चारों तरफ परकोटा है। उसमें एक द्वार है और दीवार के पास पगडंडी भी है। मैं तुम्हें दीवार पकड़ा देता हूं। जब द्वार आए तो उससे बाहर निकल जाना।'

ग्वाला उसको दीवार के सहारे खड़ा कर चला गया। वह एक हाथ से लाठी टिकाता हुआ और दूसरे हाथ को दीवार पर सरकाता हुआ चलता रहा। कुछ समय तक चलने के बाद वह द्वार के पास पहुंचा। ज्योंही वह द्वार के निकट से गुजरा, उसके सिर में खुजलाहट होने लगी। दीवार का सहारा छोड़ वह सिर खुजलाता हुआ लाठी के सहारे आगे बढ़ गया। अब वह फिर से पूरे परकोटे का चक्कर लगाए तब बाहर आने का रास्ता मिले। द्वार पर खुजलाने का अर्थ है किनारे तक पहुंचकर नौका को डुबो देना।

दो

एक दरिद्र व्यक्ति नदी के तट पर धूल कुरेद रहा था। सहसा एक चमकीला पत्थर उसके हाथ में आया। पत्थर की चमक पर मुग्ध होकर उसने उसको उठाकर जेब में रख लिया। सुबह का समय था। ठंडी हवा चल रही थी। वह नदी के तट पर लेट गया और सोचने लगा–कितना अच्छा मौसम है! घर जाने का मन ही नहीं करता, पर यहां खाना कौन देगा? कितना अच्छा हो मुझे यहीं पर भरपेट भोजन मिल जाए। सोचने मात्र की देर थी। भोजन से सजा हुआ थाल सामने आ गया। उसने भरपेट खाया। अब आलस्य आने लगा तो सोचा–सोने के लिए पलंग मिल जाए तो पूरी नींद ले लूं। उसी समय पलंग भी तैयार था। अब उसकी आवश्यकता थी फर्नीचर से सजा हुआ मकान। वह भी उसे उपलब्ध हो गया। दरिद्र व्यक्ति की आंखों में चमक आ गई। अकल्पित सुख-सुविधाएं पाकर वह अपने इष्ट के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

इतना सबकुछ होने पर भी उसे नींद नहीं आई। इसमें सबसे बड़ी बाधा थी सामने बैठा हुआ कौआ। वह बिना रुके कांव-कांव करता जा रहा था। काफी समय बाद भी वह चुप नहीं हुआ तो उसने लेटे-लेटे ही अपनी जेब से वह चमकीला पत्थर निकाला और उसे अपनी पूरी शक्ति से कौए पर फेंक दिया। कौआ उड़ गया और उसके साथ ही वह सारा इंद्रजाल सिमट गया। अब वहां नदी के सूने तट के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह व्यक्ति ठगा-सा देखता रह गया। उसे क्या पता था कि यह सारा चमत्कार उस चमकीले पत्थर (चिंतामणि रत्न) का है।

तीन

एक बुढ़िया का पुत्र अर्थार्जन के लिए किसी सुदूर क्षेत्र में गया। समय बीतता गया, पर उसका कोई संवाद नहीं मिला। एक-एक कर बारह वर्ष बीत गए। लड़का लौटकर नहीं आया। बुढ़िया दुःखी रहने लगी। एक दिन वह तालाब पर पानी भरने गई। पानी का घड़ा सिर पर रखकर वह चलने के लिए उद्यत ही हुई थी कि वहां दो पंडित पहुंचे, जो अभी-अभी ज्योतिष विद्या का विशेष अध्ययन संपन्न कर आए थे।

बुढ़िया ने उनसे पूछा–'पंडितजी! कृपा कर बताइए मेरा बेटा मुझे कब मिलेगा?' बुढ़िया के इतना कहते ही उसके सिर से घड़ा नीचे गिर पड़ा और फूट गया। यह देखकर एक पंडित बोला–'बुढ़िया! शकुन ठीक नहीं हुआ। लगता है कि तुम्हारा बेटा मर गया।' यह सुनकर बुढ़िया रोने लगी। वह पंडित को बुरा-भला कहने के लिए उद्यत हुई तो दूसरा पंडित बोला–'मां! ठहरो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं देता हूं।' बुढ़िया को आश्वस्त कर उसने कहा–'मेरे अभिमत से शकुन बहुत अच्छे हुए हैं। पानी तत्त्व–पानी में मिल गया, मिट्टी–मिट्टी में मिल गई और आकाश–आकाश में मिल गया। तुम भी खुशी-खुशी घर जाओ। तुम्हारा पुत्र तुम्हें मिल जाएगा।' बुढ़िया उत्साहित होकर घर पहुंची। आगे पुत्र खड़ा था। वह सारे दुःख को भूलकर पुत्र-मिलन की खुशी में खो गई।

चार

बादशाह दरबार में बैठा था। एक गांधी बढ़िया इत्र लेकर आया। उसने इत्र की शीशी बादशाह को भेंट की। बादशाह ने इत्र सूंघने के लिए शीशी खोली। सहसा शीशी हाथ से छुट पड़ी और इत्र बिखर गया। बादशाह ने दोनों हाथों से बिखरा हुआ इत्र समेटा और दाढ़ी, सिर के बालों तथा कपड़ों पर लगा लिया। सामने बीरबल बैठा था। उसे यह देखकर हंसी आ गई। बीरबल की हंसी बादशाह के लिए एक चुनौती बन गई। उसे अपनी उदारता दिखाने के लिए बादशाह ने सभामंडप के चारों ओर हौज बनवाए। देश के सब गांधियों को सूचना दी गई कि वे अपना सारा इत्र वहां ले आएं और कीमत ले जाएं। बादशाह के आदेश का पालन हुआ। हौज इत्र से भरवा दिए गए और उनमें हाथी के बच्चों को छोड़ दिया गया।

बादशाह सभामंडप में बैठा था। चारों ओर परिषद जुड़ी हुई थी। हाथी के बच्चे सूंड में इत्र भर-भरकर सभासदों पर उछाल रहे थे। वातावरण में नवीनता थी। तभी बीरबल सभा में प्रविष्ट हुआ। बादशाह ने उसको संबोधित कर पूछा–बीरबल! ये हाथी के बच्चे क्या कर रहे हैं? बीरबल इस प्रश्न की पृष्ठभूमि को समझ रहा था। वह मुस्कराता हुआ बोला–'जहांपनाह! अवसर के चूके गोते खा रहे हैं।' बादशाह अपनी इस भूल को भी समझ गया। एक छोटी-सी भूल को ढांपने के लिए उसने हजारों-हजारों रुपयों पर पानी फेर दिया था। पर अब क्या हो सकता था? जो अवसर खो दिया, वह तो वापस आनेवाला नहीं था।

पांच

सार्थ से बिछुड़ा हुआ युवक जंगल में भटक गया। वह इधर-उधर रास्ता खोज ही रहा था कि उसे अपने पीछे भागता हुआ उन्मत्त हाथी दिखाई दिया। हाथी से बचने के लिए वह प्राण मुट्ठी में लेकर दौड़ा। अन्य कोई उपाय न देखकर वह वृक्ष पर चढ़ गया। हाथी ने उसका पीछा किया। जब वह पकड़ में नहीं आया तो हाथी वृक्ष के तने को अपनी सूंड में लेकर उसे हिलाने लगा।

हाथी को नीचे देख युवक घबराया। उसने एक छलांग भरी और वृक्ष की बड़ी शाखा को पकड़कर लटक गया। जिस शाखा से वह लटक रहा था, उसको दो चूहे काट रहे थे। उस शाखा के नीचे एक अंधकूप था, जिसमें एक काला नाग फन फैलाए फुफकार रहा था। शाखा के ऊपर मधुमक्खियों का एक छत्ता था। हाथी ने तने को हिलाया तो वे मधुमक्खियां क्रुद्ध होकर उड़ीं और उस युवक के शरीर पर डंक मारने लगीं। उसी समय मधु के छत्ते से एक बूंद टपकी और युवक के मुंह में जा गिरी।

ऊपर, नीचे, दाएं, बाएं–चारों ओर उत्पीड़क परिस्थितियों में मधु की एक बूंद की मिठास उसे बड़ी सुखद लगी। वह सब विपदाओं को भूल अगली बूंद गिरने की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय आकाश मार्ग से जाते हुए एक विद्याधर ने उसे देखा। वह उसके पास जाकर बोला–'युवक! तुम्हारे चारों ओर मौत है। आओ, इस विमान में बैठो। मैं तुम्हें तुम्हारे गंतव्य पर ले जाकर उतार दूंगा।' युवक ने कहा–'एक बूंद मधु चाट लूं, फिर चलूंगा।' बूंद गिरी। युवक उसकी मिठास से अभिभूत हो गया। विद्याधर ने उसको पुनः आह्वान किया, किंतु वह एक और बूंद के चक्कर में रहा। विद्याधर ने कुछ समय तक उसकी प्रतीक्षा की। पर उसकी एक बूंद की शृंखला आगे बढ़ती ही गई। विद्याधर चला गया। उधर चूहों ने शाखा काट दी। वह युवक अंधकूप में गिरा और काले नाग के काटने पर जीवन से हाथ धो बैठा।

छह

एक गड़रिये को कहीं से एक चमकीला पत्थर मिला। उसको उसने एक सेर गुड़ में किसी किसान के हाथ बेच दिया। किसान ने उसको एक रुपये में बेचा और बिसाती ने खरीद लिया। बिसाती अपनी अन्य चीजों के साथ उसे भी बाजार में बेचने ले गया। एक जौहरी ने उसको देखा और पूछा–'इस पत्थर की क्या कीमत है?' बिसाती ने उसके पांच रुपये बताए। जौहरी उसे एक रुपये में लेना चाहता था। एक से आगे बढ़ता हुआ चार रुपये निन्यानबे पैसे तक पहुंच गया, पर बिसाती अपनी बात पर अड़ा रहा। जौहरी ने सोचा–अभी आगे जाकर आता हूं, तब तक वह इस कीमत में सौदा देने के लिए तैयार हो जाएगा।

जौहरी आगे निकला और पीछे से एक अन्य जौहरी आ पहुंचा। उसने पत्थर की कीमत पूछी तो बिसाती बोला–'पचीस रुपये।' जौहरी ने उतने रुपये दिए और पत्थर ले गया। कुछ समय बाद वह पहला जौहरी लौटकर आया और बोला–'कहां है पत्थर?' बिसाती ने कहा–'मैंने तो उसको पचीस रुपये में बेच दिया।'

जौहरी के दिल पर चोट-सी हुई। वह बोला–'अरे मूर्ख! वह तो सवा लाख का हीरा था।' बिसाती ने सहजभाव से कहा–'बाबू! मैं मूर्ख कैसे हूं? मुझे तो हीरे का पता नहीं था, फिर भी मैंने पांच के स्थान पर पचीस रुपये पा लिए। आपने एक पैसे के बदले सवा लाख का हीरा खो दिया, यह कहां की समझदारी है?' जौहरी को अपनी भूल का गहरा अनुताप हुआ। ❑

कर्म काटने की कला

साध्वी समताश्री

धार्मिक व्यक्ति को सबसे पहले कर्म काटने की कला का ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि कर्म-बंध के दरवाजे सदा खुले रहते हैं। कचरा प्रवेश करता रहता है। यदि उन्हें बंद करने का ज्ञान नहीं होगा तो सफाई कैसे होगी? स्रोत बंद हो, कर्ज बढ़े नहीं, इसके लिए कर्म निर्जरा के प्रयोग प्रबल करने चाहिए।

1. **अज्ञान से कर्म-बंध होता है**–वह अज्ञानी यह नहीं जानता कि आत्म-मुक्ति का कौन-सा मार्ग है। व्यावहारिक दृष्टि से जो अज्ञानी होते हैं वे भी हास्य के पात्र बनते हैं, अपमानित होते हैं। मंत्रीजी बोले–मैं कोई ऐसा-वैसा नहीं हूं। मैंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से मैट्रिक पास किया है। पी.ए. ने कहा–'बाबूजी! यूनिवर्सिटी से मैट्रिक पास नहीं होती। हां, मैं भूल गया। मैंने इलाहाबाद हाईकोर्ट से मैट्रिक पास किया है। यह सुनकर सब हंस पड़े।

2. **भाव से कर्म-बंध होता है**–एक व्यक्ति हार कर परवशता में गलत कार्य करता है और दूसरा सहजता में करता है। दो मुनीम थे। एक मुनीम यह सोचकर सेठ की चोरी करता कि सामने लड़की का विवाह है। सेठजी कंजूस हैं। हमारा शोषण करता है। मांगने पर भी सहयोग करने वाला नहीं है। ऐसी दशा में दो सौ, चार सौ चुराने पड़ेंगे। दूसरा मुनीम सोचता–इस सेठ को धोखा देना है। यह हमारा शोषण करता है। ऐसे भाव वाले की गति–स्थिति दोनों के परिवर्तन में निमित्त बनती है।

3. **कर्म-बंध के अनेक निमित्त हैं**–उनमें एक निमित्त है–माया, परंतु ये सारे निमित्त माया से बलवान बन जाते हैं।

कर्म कटते हैं पुरुषार्थ से–कायरता तथा बलहीनता से किसी कार्य में सफलता नहीं मिलती। विद्यार्थी को पाठ याद करने के लिए दिया, पर मंद-बुद्धि के कारण वह याद नहीं कर सका। गुरु ने उसे पीटा। हाथ पर बेंत से मारा। परंतु गुरु ने देखा–उसके हाथ में विद्या की रेखा ही नहीं है। उसने गुरु से पूछा–विद्या की कौन-सी रेखा होती है? गुरु ने अपने हाथ को दिखा कर बताई। वह घर गया। चाकू से चमड़ी छेद कर वैसी रेखा बनाई, फिर गुरु को दिखाई। यह देख कर गुरु गद्गद हो गए और बोले ऐसा उद्यमी सबकुछ कर सकता है। वही छात्र पाणिनि व्याकरण का एक दिन निर्माता बन गया।

कर्म कटते हैं समभाव से—एक दिन मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी ने सागरमलजी बैद चूरू वाले से कहा—मैंने तुम जैसा सातवेदनीय कर्म वाला व्यक्ति नहीं देखा। मेरे जैसा असातवेदनीय कर्म वाला, परंतु समभाव से सहन करने के कारण मैं भी साता का अनुभव कर रहा हूं।

समभाव दोनों स्थितियों में रखना चाहिए। पुण्य भोग के समय भी और पाप भोग के समय भी। मेतार्य मुनि, गजसुकुमाल, क्रूरगड्क आदि अनेक साधक इसके उदाहरण हैं जिन्होंने समभाव से आत्म मुक्ति पाई।

4. **कर्म कटते हैं उपदेश-श्रवण से**—महावीर की वाणी, कितनी कल्याणी। 'वेरं ह्रुई अप्पणो।'—वैर से वैर बढ़ता है। **जा जावच्चई रयणी न सा पडिनियत्तई**

ऐसी अनेक शिक्षाएं सुनकर लाखों लोगों ने सन्मार्ग पाया है। अच्छी हितकर बात कल पर नहीं छोड़नी चाहिए।

कर्म सदा स्टॉक में रहते हैं—जब तक मोक्ष नहीं हो जाता तब तक कर्मों का भंडार भरा रहता है। एक दिन बच्चे से किसी ने पूछा—तेरी मां कहां है? उसने तत्काल कह दिया—'आउट ऑफ स्टॉक।' यह कैसे? बच्चे ने कहा—मैं एक दिन चीनी लाने दुकान पर गया तब दुकानदार ने मुझे यही कहा था कि चीनी आउट ऑफ स्टॉक है। परंतु कर्मों का स्टॉक सदा रहता है। अतः हमें सतत जागरूक रहना चाहिए। शुभ भावों में जीना चाहिए।

ज्ञात अज्ञात किसी भी स्थिति में कार्य करें मन पर सबकुछ रिकार्ड होता है। बच्चे ने झगड़ते हुए मां-बाप का कैसेट तैयार कर लिया। एक दिन बच्चे ने कहा—पापा! आज मैं नया कैसेट लाया हूं। आपको अवश्य सुनना है। पिता अच्छे मूड में था। जैसे ही दो लाइनें सुनी कि पिता बोला—पागल! ऐसी कैसेट क्यों बनाई? मासूमियत के साथ बच्चे ने उत्तर दिया—पापा! हम जो करेंगे, वही तो रिकॉर्ड होगा।

हमारी करणी का उत्तर ही तो कर्म है—एक बार बादशाह, बेगम और वजीर तीनों घूमने निकले। रास्ता छोटा था, तीनों एक लाइन में चलने लगे। सबसे आगे बेगम, वजीर, बादशाह। बादशाह ने वजीर के चिहुंटी काटी, वजीर ने बेगम के चिहुंटी काटी। बेगम उत्तेजित हो गई। वजीर के थप्पड़ मारी। वजीर ने बादशाह के थप्पड़ मारी। बादशाह गर्म हो गया। वजीर ने कहा—इसमें गर्म होने की क्या बात है? मैंने तो आपके टेलीग्राम का ही उत्तर दिया था। नया कुछ नहीं किया।

चींटियों को यह ज्ञान होता है कि मिठाई कहां है? चीनी कहां है? वैसे ही धार्मिक को इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिए कर्म का बंध कहां होता है? कैसे होता है?

यदि व्यक्ति सामान्य जीवन बिना बोध के जीता है तो वह इस जीवन में अथवा अगले जन्म में दुःखी होगा। छात्रों ने मिलकर एक छात्र की हत्या कर दी। पूछा—तुमने ऐसा क्यों किया? उत्तर मिला—हमारा नाम प्रमुख पत्रों में सुर्खियों में आएं। अतः ऐसे स्वभाव के लोग भारी कर्मों का बंध करते हैं।

एक राजकुमार जो पुण्यकुमार नाम से प्रसिद्ध था। उसके जन्म के साथ ही राज्य में बीमारी फैल गई। राजा ने सोचा—कुछ समय के लिए पुण्यकुमार को शहर से बाहर दूर भेज दिया जाए तो प्रजा के लिए ठीक रहेगा। अनाज के गाड़े भरकर रवाना किए। संयोग की बात, गाड़े टूट गए, अनाज नष्ट हो गया। धीरे-धीरे करके साथ वाले बिछुड़ गए। सभी सुविधाएं समाप्त हो गईं। लोगों ने कुमार का नाम अपुण्यकुमार रख दिया। कब पुण्य क्षीण हो जाए, पता नहीं चलता। भोगते समय कर्म की भयंकरता, कठोरता का पता चलता है। एक बार.दो सुनार संबंध करने गए। लड़का काणा था, लड़की पंगु। दोनों का संबंध तय हो गया। आज की तरह जांच नहीं होती थी। शादी के बाद विदा होते समय बहनों ने गीत गाया—'गढ़ जीत्यो रे बाणिया, ठा पड़सी उठाणिया' ।

संघाती कर्म यों उदय में आते हैं—अभव्य जीव सतत अनंत काल तक कर्म-बंध करते ही रहते हैं। उनका

कर्म-तालाब कभी नहीं सूखता। कभी कम-ज्यादा भराव तो हो सकता है, परंतु खाली कभी नहीं। अभव्य जीवों के लिए दस कार्य असंभव माने गए हैं–

1. पात्रदान, 2. सुलभबोधि, 3. अनुत्तर विमान गमन, 4. त्रेषठ श्लाका पुरुष, 5. इंद्रपद, 6. नारद पद, 7. केवली के पास दीक्षा, 8. शासनसेवी यक्ष-यक्षिणी, 9. समाधि-मरण, 10. समवसरण गमन।

क्रोध का आना हर एक के लिए संभव है, परंतु क्रोध का भाव वैर में नहीं बदले। एक बार हैदराबाद से मीयां 1000 मुहरें लेकर आ रहा था। मन्नाणा के ठाकुर घोड़ी के पीछे दौड़े। दोनों को मार कर सारा धन चुरा लिया। वह आदमी मर कर उसी ठाकुर का पुत्र बना और घोड़ी जोबनेर ठाकुर की पुत्री। दोनों की शादी हुई। पुत्र बीमार रहने लगा। मरते समय कहा–मेरा कर्ज पूरा हो गया है।

वैर से हानियां–भगवान ने कहा है–**वैराणु बंधीणी महब्भयाणि।** वैर का अनुबंध महान भय पैदा करता है। कई प्रकार के वैरी होते हैं–

1. ऋणकर्ता पिता शत्रुः, माता च व्यभिचारिणी।
   भार्या रूपवती शत्रुः, पुत्रः शत्रुः अपंडितः।।1।।

इतिहास इस बात का साक्षी है। खंधक ने काचर छील कर कर्म बांधे। आसक्त मन प्रबलता से कर्म बंध करता है। गजसुकुमाल के जीव ने बच्चे के सिर पर गर्म रोटी रखी। प्रतिदान में उसने अंगारे रखे। श्रेणिक के जीव ने मुनि के पारणे में बाधा डाली। प्रतिदान में खुद के खाने में अंतराय पड़ी। एक विचारक ने लिखा कि मैं दो से डरता हूं–

1. कर्म से 2. जो कर्म से नहीं डरते उनसे।

धृतराष्ट्र पूर्व जन्म में तपस्वी ब्राह्मण थे। पत्नी बीमार हुई तब वैद्य आए। दवा के लिए सौ अंडे चाहिए। तापस सर्पिणी को मारकर सौ अंडे ले आया। सांप रोते-रोते अंधा हो गया। तापस धृतराष्ट्र बना। वैद्य–दासी, पुत्र विदुर बना। सांप भीम बना और सौ को मारा।

मेतार्य मुनि मासखमण के पारणे में सुनार के घर गए। सुनार बहराने गया। सोने के यव क्रोंच पक्षी निगल गया। वहम से मुनि को पीट डाला।

अज्ञान पहला कर्म है, अतः पहले ज्ञान के आवरण को ही मिटाएं। अज्ञानी किसी भी स्तर पर सचाई को न जानता है, न प्रयोग करता है।

ज्ञान जीवन के हर मोड़ पर चाहिए। विशेष नहीं तो सामान्य ज्ञान तो चाहिए। एक व्यक्ति ने सोचा–मैं घोड़े पर बैठूं, इतने समय में ज्ञान दे तो संत के पास जाऊं। संत ने कहा–घोड़े पर होश से बैठो और होश से उतरो, यही ज्ञान है।

कर्म धारणा के प्रति हम पाजीटिव बने, यह अपेक्षा है। अन्यथा निराशा के गर्त में ढकेल देती है।

1. जो दूसरों को कोसते हैं। कष्टों से घबराते हैं उनके लिए कर्म आलंबन है।
2. विष-बीज बोते समय सावधान रहो, यह कर्मवाद सिखाता है।
3. प्रतिकूलता में समता रखने से कर्म बाधक नहीं बनता।
4. वर्तमान अपराध के बिना जो लोग भोग रहे हैं, वह कर्म है।
5. नैतिक रहने की प्रेरणा देने वाला कर्मवाद है।

कर्म-बंध का बड़ा कारण है–चंचलता। इसे कम किया जा सकता है। रोका नहीं जाता। कम करने का कारगर उपाय है–भाव विशुद्धि। क्योंकि भाव ही व्यक्ति को चलाते हैं। भाव का धरातल मन-बुद्धि से गहरा है। भाव सकारात्मक, नकारात्मक दोनों होते हैं। सकारात्मक भाव सुखद एवं सुगंधित होते हैं। सरल, स्फूर्त एवं सुखद होते हैं।

शुद्ध भावों से मानव कर्म काटने का एक महायज्ञ शुरू करें। अप्रमाद और पुरुषार्थ से जागरूक बनें। मन में पापभीरुता जागे। कर्म-बंध और कर्म-मुक्ति के कारणों की मीमांसा चलती रहे तो हम इस प्रक्रिया से कर्म-बंध से बच सकते हैं। ❒

सम-सामयिक सोच पर नजर टिकाएं

झरोखा संगठन का निर्देशिकाएं समाज की क्षमताओं का आईना बनें

एक समय था जब समाज की ताकत और संख्या सीमित थी, क्षेत्रीय विस्तार भी नहीं था। संसाधनों की कमी थी। सादा, सरल और श्रमप्रधान जीवन था। हां, समाज की जाजम की अहमियत थी। बिरादरी भोज होते रहते थे, परस्पर मिलना-जुलना होता रहता था। पर परिस्थितियां धीरे-धीरे बदलने लगीं। अनेक परिवार व्यापारार्थ एवं अन्यान्य कारणों से गांवों से शहरों की ओर अथवा सुदूर प्रदेशों में जाने लगे। क्षेत्रीय विस्तार होने लगा। बड़े शहर कॉलोनियों में बंटने लगे। क्षेत्रीय दूरी एवं समयाभाव से परस्पर मिलने-जुलने के अवसर बाधित होने लगे। अर्थ की अंधी दौड़ ने रही सही कमी की पूर्ति भी कर दी। मिलने-जुलने में भी वह लगाव और सौहार्द नहीं रहा। उसका स्थान सामाजिक व्यवहार लेने लगे।

शुरुआती दौर में समाज में कुछ प्रभावशाली व्यक्ति हुआ करते थे जिनकी समाज पर पकड़ हुआ करती थी। लोग उनकी बात को मानते, अधिमान देते। वे भी समाज की चिंता करते। गलती होने पर अंगुलि निर्देश कर देते। अब तो सब कुछ पलट रहा है। बाह्य आडंबर चरम सीमा पर है। तलाक व घर से पलायन हो रहे हैं। धार्मिक श्रद्धा, आचार, विचार भी कभी-कभी कठघरे में खड़े दिखाई देते हैं।

वर्तमान में समाज की तीन, चार पीढ़ियां एक साथ चल रही हैं। उनमें पारस्परिक सोच का अंतर जमीन आसमान जैसा दिखाई दे रहा है। यद्यपि संयुक्त परिवार और एक छत के नीचे रहने की परंपराएं कमजोर पड़ रही हैं, पर परिवार व्यवस्था के संरक्षण की आवश्यकता आज भी बनी हुई है।

व्यक्तिगत स्तर पर क्षमताओं की संयोजना व्यक्ति और परिवार करते हैं, पर समाज का भी दायित्व होता है कि वह समय-समय पर अपनी और समूह की क्षमताओं का आकलन करे। इन वर्षों में छोटे-बड़े क्षेत्रों में निर्देशिकाओं के प्रकाशन की शृंखला सामने आ रही है। यह इस दिशा में उठाया गया एक सार्थक कदम है।

निर्देशिकाएं समाज का दर्पण होती हैं। इनमें समाज के सदस्यों के पारिवारिक विवरण, पते, संपर्क सूत्र आदि दिये हुए होते हैं, जिससे उस परिवार तक पहुंचना, संपर्क कर लेना सहज हो जाता है।

मुझे स्मरण हो रहा है—अहमदाबाद तेरापंथ समाज ने अपने वहां की निर्देशिका तैयार की, जिसका लोकार्पण कार्यक्रम आयोज्य था। उन्होंने मुझे बतौर वक्ता आमंत्रित किया। संघीय प्रतिबद्धता को देखते हुए मैंने स्वीकृति दी। मैंने देखा, एक खूबसूरत निर्देशिका तैयार की गई है, जिसकी साज-सज्जा, छपाई, कागज आदि काबिले तारीफ है। स्मारिका को अपडेट करते हुए समाज के परिवारों के पते, सदस्यों के नाम, फोन नंबर, ईमेल पते सहित जानकारियां दी गई हैं।

अचानक मेरे मन-मस्तिष्क में एक विचार कौंधा कि क्या प्रस्तुत स्मारिका समाज की संपूर्ण तसवीर बता

रही है, शायद नहीं। तब क्यों नहीं ऐसी निर्देशिकाएं भी बनें, जो समाज की हकीकत कहे, समाज की स्थिति, परिस्थिति, गति-प्रगति, शिक्षा-दीक्षा, व्यापार-व्यवस्था, जीवन-शैली आदि को भी प्रतिबिंबित करे।

● हम समाज की टेबल पर बैठकर सिर्फ पते ठिकाने ही न तलाशें वरन समाज के दु:ख-सुख को भी रेखांकित करें। मैंने एक आईना प्रस्तुत करने की कोशिश की ताकि यह जान सकें कि आज की तारीख में हमारा समाज, हमारे परिवार में कौन कहां खड़े हैं?

● कुछ प्रश्न खड़े हुए, जिनके उत्तर इन स्मारिकाओं के माध्यम से ढूंढ़ने जरूरी लगते हैं–यथा समाज का संगठनात्मक ढांचा कैसा है? सभी सदस्य संगठनों से जुड़े हुए हैं या नहीं, यदि नहीं तो क्यों?

● हमारे सदस्यों का श्रावकीय आचरण कैसा है? वे धर्मसंघ के साथ संपर्क में है या नहीं, यदि नहीं तो इसे दुरुस्त किया जाये।

● समाज का कोई अंग कष्ट में तो नहीं है। है तो उसके स्वाभिमान को ध्यान में रखकर समाज अपने दायित्व को पूरा करने में लगे। समाज का आर्थिक पक्ष कितना सुदृढ़ हुआ है? आनुपातिक स्थिति क्या है? इसका विश्लेषण करना भी अपेक्षित है, क्योंकि अर्थ भी समाज की धुरी है।

● समाज के हर सदस्य को जोड़ने में हम सफल हैं या नहीं? समाज की अहमियत कैसी है।

● समाज की प्रतिभाओं के आंकड़े ही पर्याप्त नहीं। उन्हें जानना, पहचानना और उजागर करना भी जरूरी है। उनके मन में समाज के प्रति कितना लगाव और सम्मान है, यह भी जानना जरूरी है। नहीं तो प्रेरणा देनी होगी।

● समाज का कोई सदस्य अकारण उदासीन तो नहीं है, उसे मुख्यधारा में लाना जरूरी होगा।

● हम निर्देशिका के पन्नों पर निगाह डालें कि व्यसन-मुक्त, संस्कारी समाज की दिशा में हमारे परिवारों की स्थिति क्या है।

● तेरापंथ समाज संघनिष्ठा, गुरुनिष्ठा और आचार व एकता के लिए जग विख्यात है। विलक्षण भी है, पर कहीं उसमें छोटा- सा भी छेद न होने पाये, ऐसा हो तो कतई क्षम्य नहीं है।

● समाज के कुछ सदस्य अपने आपको समाज की जाजम से बड़ा समझने की भूल तो नहीं कर रहे हैं। योग्यताएं और क्षमताएं भी समाज की जाजम पर तो एक बिसात में बिछी होनी चाहिए।

● अंधी प्रतिस्पर्धा, अर्थ का भोंडा प्रदर्शन, फिजूलखर्ची, दिखावापन जैसी विसंगतियों से समाज कितना बचा हुआ है? यदि नहीं तो चिंता और चिंतन अपेक्षित है।

● समाज में त्यागी, वैरागी, तपस्वी व्यक्तियों को समाज स्तर पर आदर सम्मान देने के साथ-साथ उन्हें सम्मानित नजरों से देखा जा रहा है या नहीं, यह जरूरी कदम होगा।

● समाज को बहुत कुछ दे चुके श्रावक-श्राविकाओं को old is gold मानने की प्रवृत्ति है या उन्हें Dustbin का हिस्सा समझने की भूल हो रही है। इस पर सार्थक दृष्टि डालनी जरूरी है।

कुछ बिंदु मेरे मानस पटल पर उभरे, और भी हो सकते हैं। मुझे लगता है कि यदि इन निर्देशिकाओं के माध्यम से हम समाज की पूछ-परख, आकलन एवं हकीकत से रू-बरू हो सकें तो ये निर्देशिकाएं सही अर्थ में समाज का आईना बन जायेंगी, समाज के हर सदस्य को गर्व होगा कि वह अपने समाज के प्रति उत्तरदायित्व के निर्वाह में जागरूक एवं सचेष्ट हैं। ❑

पदमचन्द पटावरी

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती, जून, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 मई, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।